हिन्दी से परदेश तक तथा अन्य आलेख

गोवर्धन यादव

अनुक्रम.

1-ऋषि **परंपरा के प्रतीक-पुरुष**

डा.श्री रामनिवास “मानव”

समय के इस निर्दयस्त दौर में बाजारवाद ने आदमी के संवेदना जगत को क्षत-विक्षत करते हुए उसे एक खण्डहर के रुप में तब्दील कर दिया है. खुदगर्जी, फ़रेब, दिखावा और महज औपचारिकताएँ ही अब उसकी पहचान बनती जा रही है. अपने लाभ-लोभ, व्यक्तिगत स्वार्थ,संबंधों के सिमटते दायरे में वह कैद होकर रह गया है. उसके शास्वत मूल्यों की जमीन लगातार छॊटी होती जा रही है. रुप-रस-तथा गंध के संवेदनों, भाव-जगत के मूलवर्ती अहसासों और क्रिया-कलापों से वह लगातार अजनवी बनता जा रहा है. बात यहाँ आकर रुकती नहीं है. पैसा कमाने की अंधी दौड में आदमी के परिवार की दीवारों में दरारें पडने लगी है. आज पैसा ही भगवान बन चुका है. आज आदमी के पास सब कुछ है,लेकिन समय की कमी है. इन विचित्रताओं ने अब बच्चॊं को घेरना शुरु कर दिया है. बच्चॊं का बचपन कैद होकर रह गया है. एक प्यारा सा बचपन, भोला सा बचपन जो हमारा- आप सब का वर्तमान है और हमारा भविष्य भी. समय के इस तेढे-मेढे और भयावह दौर में डा.रामनिवास मानव की साहित्य-जगत में उपस्थिति इस बात का अहसास कराती है कि अभी कुछ बिगडा नहीं है. आपकी रचनाएं काफ़ी कम और सरलतम शब्दों में, ओढे हुए अभिजात्य से काफ़ी अलग, अपने पास-पडौस के परिवेश और एक तरह से तमाम जाने-बूझे-भोगे का अहसास कराने वाली कविताओं का अनूठा संसार है, जिन्हें पढकर बच्चो को नया आकाश मिलता है.

किसी भी कविता को अच्छी कविता बनाने वाला तत्व, उसका जीवन होता है. सहजता-सरलता-तरलता और निश्छल भावुकता को अपने में समेटती आपकी कविताएँ, शब्दों के माध्यम से हमारे सामने आती है. निःसंदेह आपका यह श्लाघनीय प्रयास है. पाब्लो नेरुदा ने एक जगह कहा है-“कविता में दरवाजे होना जरुरी है, ऎसे रास्ते, जिनमे से होकर निकला जा सके”.निश्चित ही आपकी रचनाएँ पाठकों को इस बात का अहसास दिलाती है.

हार्वडफ़ास्ट ने कहा है-“ ऎसे और अखण्ड समय में, एक और अविछिन्न काल प्रवाह में एक प्राणी रहता है,जिसका नाम मनुष्य है(इसे”मानव” भी कह सकते हैं), जो सर्वहारा मूर्तक्षमा,पृथ्वी का पुत्र है, तेज पुंज, द्दढव्रती, धीमान, सत्याश्रमी, अक्रोधी, अशेष, धैर्यवान, जो सब जानता है, समझता है, सब सहता है और सीमा का

अतिक्रमण होने पर फ़ट भी पडता है". उपरोक्त तमान गुणों का समुच्चय हम डा. "मानव" में पाते है. जहाँ तक फ़ट पडने की बात है, हमने किसी ने भी उन्हें गुस्से में आविष्टित होते नहीं देखा है.

डा. मानवजी से मेरा परिचय ज्यादा पुराना नहीं है और न ही उसे नया ही कहा जा सकता है.. संभवतः आपसे मेरी पहली मुलाकत "बाल कल्याण एवं बाल साहित्य शोध केंद्र, भोपाल में हुई थी. तब से लेकर अब तक उनसे मेरी मुलाकातें होती रही है. बाल साहित्य शोध केंद्र में भीलवाडा(राज) से डा. भैंरुलाल गर्गजी, खटीमा से डा राज सक्सेना"राजः अहमदाबाद से डा.हुन्दराज बलवाणीजी, संगरिया(राज) से भाई गोविन्द शर्मा तथा अन्य बालसाहित्यकारों से भेंट हुई थी. हमारे पास समय की कोई कमी नहीं थी, सो हम भारत-भवन देखने चल पडॆ. रास्ते में मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन अवस्थित है. मैंने उन सब का परिचय, डा.सुनीता खत्रीजी से करवाया जो हिन्दी भवन से प्रकाशित होने वाली द्वैमासिक पत्रिका "अक्षरा" की सम्पादिका है. आप सभी ने इस पत्रिका की आजीवन सदयता ग्रहण की. यह मेरे लिए प्रसन्नता का विषय था.

जैसा कि आप सभी जानते ही है कि डा.मानव कुशल कवि,लेखक, शिक्षाविद, सफ़ल शोध-निर्देशक,निष्पक्ष पत्रकार, समाजसेवी तथा कुशल आयोजक-संयोजक के रुप में प्रतिष्ठित है एम.ए.(हिन्दी) पी.एचडी और डीलिट तक आप शिक्षित हैं. आपकी.विभिन्न विधाओं में चालीस महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जिनमे चौदह काव्यकृतियां, सात बालकाव्य-संग्रह, चार लघुकथाओं के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं. इनके अलावा चार शोध-प्रबन्ध और नौ सम्पादित ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं सबसे प्रमुख कार्य तो यह भी हुआ है कि देश-विदेश की अडसठ प्रमुख बोलियों में आपकी रचनाओं का अनुवाद हो चुका है. पाठ्यक्रम में भी आप सादर समादृत किए गए हैं. आपने हरियाणवी भाषा पर दो ग्रंथ लिखे हैं. आपने इसके अलावा बहुत कुछ किया है. सबसे खास और सबसे अहम बात तो यह कि आपने ऋषि दधिचि की परंपरा को आगे बढाकर, अपने मरनधर्मा शरीर का अवसान हो जाने के बाद दान कर दिया है, ताकि आने वाली पीढी शरीर विज्ञान में शोधादि कर सकें. आदमी अपनी अन्तिम सांस तक धन संग्रह करने का लोभ छोड नहीं पाता,लेकिन इस निर्मोही-अनासक्त ऋषि ने उसका भी दान कर देने की अग्रिम वसीयत लिख दी है. उस राशि का उपयोग साहित्य नौर समाजसेवा में हो सकेगा. यह जानकर मुझे इस बात का सहज ही अंदाजा हो जाता है कि श्रीमद्भगवत्गीता के उपदेशों का आप पर गहरा प्रभाव है. इन तमाम खूबियों और उपलब्धि के बावजूद आपको घमण्ड नाम की चीज छू नहीं पायी है. आपकी सहजता और सरलता देखते ही बन पडती है. किसी ने कहा है इस संसार में सब कुछ होना बडा आसान है, लेकिन सरल और सहज होना उतना ही कठिन होता है. सारे मित्र डा.मानव के इन गुणों से भली-भांति परिचित है.

बालसाहित्यकार एवं व्यंग्य-शिल्पी भाई गोविन्द शर्माजी ने फ़ेसबुक पर खबर प्रसारित की कि डा. मानव के सुपुत्र श्री मनुमुक्त" मानव" ने भारतीय सिविल सेवा परीक्षा में सफ़लता प्राप्त कर ली है. इस खबर को पाकर प्रसन्न होना स्वभाविक ही था. मैंने तत्काल फ़ोन पर आपको बधाइयाँ -शुभकामनाएँ दीं. डा. शिवनाथ रायजी के पत्र ने इस बात का उल्लेख किया है कि आपकी होनहार बेटी डा.अनुकृति भी बी.सी.यूनिवर्सिटी, बोस्टन(अमेरिका) में अर्थशास्त्र की प्राध्यापक है. निश्चय ही डा, मानव को इन तमाम तरह की गौरवमयी उपलब्धियाँ प्राप्य है, हमें भी इस बात का गर्व है कि हम आपके साथ है और आपके मित्र भी है. हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास कि आप लगातार साहियकोष में श्रीवृद्धि करते रहेंगे.

अंत में मैं परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि

"पश्येम शरदः शतम / जीवेम शरदः शतम
श्रृणुयाम शरदः शतम / प्र ब्रवाम शरदः शतम
अदीनाः स्याम शरदः शतम/ मूयश्च शरदः शतात (यजुर्वेद अ.36/24)

"आप देखें सौ वसन्त, जिएं सौ वसन्त, सुने सौ वसन्त,

मुखरित रहें सौ वसन्त, स्व निर्भर बने रहें सौ वसन्त

और ऎसा ही जिएं शत्तोतर जीवन भी"

....

2 अंधेरे में मुक्ति के रास्ते खोजता मुक्तिबोध

गजानन माधव मुक्तिबोध (१३ नवम्बर १९१७ * ११ सितम्बर १९६४)

मैंने न तो गजानन मुक्तिबोध को देखा है और न ही कथा-सम्राट मुंशी प्रेमचन्दजी को. हाँ इनको पढने का सुअवसर मुझे लगातार प्राप्त होता रहा है. इसे संयोग ही कहें कि मुझे प्रमोशन मिला और मैं छत्तीसगढ स्थित कवर्धा में पोस्टमास्टर होकर २००२ में पदस्त हुआ. कवर्धा का रास्ता राजनांदगांव होकर ही जाता है. यह वह समय था जब मैं मुक्तिबोध की स्मृतियों को संजोते हुए दिग्विजय कालेज पहुंचा था, राजा दिग्विजय दास ने किला कालेज को दान कर दिया था. सन १९५८ में मुक्तिबोध यहाँ अध्यापक होकर आए थे. शहर में कुछ दिन किराये के मकान में गुजारा करने के बाद उन्हें किले के पिछले हिस्से में स्थित सिंहद्वार के बगल में रहने को जगह दी गई

थी. इसी तरह सन २०१५ में मुझे मुंशी प्रेमचन्दजी के गांव लमही जाने का सुअवसर मिला. संयोग से यह यात्रा लमही से काठमांडु तक थी. साहित्य के दो दिग्गज हस्तियों को श्रद्धासुमन चढाने का अनायस ही अवसर मुझे मिला

दिग्विजय कालेज के पिछले हिस्से में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बलदेवप्रसाद मिश्र के साथ मुक्तिबोध की प्रतिमा स्थापित कर इस स्थान को "त्रिवेणी" नाम दिया गया है. मुक्तिबोध के घर की पहचान उसका चक्करदार जीना है जो उनके काव्य-संसार में एक "मोटिफ़" की तरह प्रकट हुआ है. यह चक्करदार जीना ही तो है जो अब मुक्तिबोध के घर होने की याद दिलाता है, लेकिन रंग-रोशन होने व मरम्मत के बाद यह स्थान अब पूर्व की तरह जगमगाने लगा है. वह भुतहा कमरा लगभग गायब हो गया है, जहाँ आज से चार दशक पहले एक कवि रहा करता था, .मरम्मत से पहले इस कमरे में मकडी के जाले लगे रहे होगे, जहाँ धूल भरी रही होगी और बरसात के बाद सीलन भरी घुटन भी समायी रही होगी.. यदि यहाँ चक्करदार जीना न होता तो शायद ही कोई जान पाता कि यह कवि का घर रहा होगा. कमरे में बडी-बडी खिडकियां जरुर अपनी जगह स्थित हैं लेकिन वह दृष्य धुंधला सा गया है, जो मेरी स्मृति में बरसों-बरस छाया रहा था.. इन खिडकियों से झांकते हुए मुझे अपनी स्मृतियों में वह दृष्य जरुर दिखाई दिया था, जो कभी सचमुच में रानीसागर के पास मौजुद था. पास ही में वह श्मशान भुमि भी थी, जहां कभी बच्चों की मौत होने के बाद दफ़ना दिया जाता था.. बारिश में रानीसागर समुद्र की तरह लहराता रहा होगा, सूख चुका था. दूसरी खिडकी से झांकने पर बस्ती का फ़ैलाव साफ़ नजर आता है. चक्करदार जीने से चढकर उस कमरे तक मैं सांस रोके पहुंचा था. मन में अब भी कई तरह के विचार आकार ले रहे थे. उनकी कविता के धुंधले बिंब बन-बिगड रहे थे. किले में छाया घुप्प-घना अन्धकार ,सामंती प्रतीकों, और डरावाने रूपाकारों के बीच कवि ने इसी रास्ते पर अपने समूचे अन्धकार, तमाम तरह के प्रतीकों और रूपाकारों को साथ लिए आता है और अपनी कविता में जस का तस उतार देता है.

मुक्तिबोध का आवास एक किला है. किला तो फ़िर किला ही होता है, चाहे वह किसी भी भू-भाग में स्थित क्यों न हो. किले की भव्यता और साज-सज्जा को देखकर दर्शक खुश होकर अपने को धन्यभाग महसूसता होगा. लेकिन मुझे यह सब देखते हुए उसका अतीत आंखों के सामने घूमने लगता है. घूमने लगते हैं उन तमाम सैनिकों के चेहरे जिसने अपनी राजा की इच्छा को पूरा करने के लिए अपने प्राणॊं की बाजी लगा दी थी.. मुझे घोडॊं के हिनहिनाने की आवाज, हाथियों के चिंघाड्ने की आवाज सुनाई देने लगती है. जिसे आमतौर पर सेना कहा जाता है. फ़िर हर किले का अपना इतिहास होता है और वह इतिहास रक्त-रंजित घटनाओं से भरा पडा है. किला है तो फ़िर एक राजा जरुर ही होगा, उसमे दिग्विजय की कामना भी होगी. समय-समय पर युद्ध भी लडॆ गए होगे. केवल एक कामना को पूरा करने के लिए न जाने कितने निरपराधियों को अपनी जाने गवांनी पडी होगी. किले के सुरक्षा के लिए न जाने कितने जतन भी किए जाते रहे होगे .किले के अन्दर अनगिनत षडयंत्र भी रचे जाते रहे होगे. जरा-जरा सी बात पर न जाने कितने नागरिकों को राजा की सनक पर मौत के घाट उतार दिया जाता रहा होगा. युद्ध/संघर्ष के दिनों में किसानों के घर-खेत जला दिए जाते थे, मजदूरों का शोषण किया जाता था, राजा अपने बचाव के लिए न जाने कितने ही गुप्त रास्ते,बनवाकर रखता था ताकि, उनका उपयोग आसन्न संकट को देखकर पलायन कर सके.

मुक्तिबोध किले में रहते हुए महल के वैभव को नहीं देखते, उन्हें तो बस दिखाई देता रहा होगा, उस किले का रक्त-रंजित इतिहास. बेमौत मारे गए और ब्रह्मराक्षस बन चुके लोग, वे अन्धेरी सुरंगे, जिनमें से दिल दहला देने वाली आवाज रह-रह कर गूंजती है. रंग-रोशन के बाद सारा परिदृष्य तो बदल दिया गया,लेकिन जो अतीत में घट चुका, उसे कैसे बदला जा सकता था? इन अन्धेरों (पाखण्ड) को उजागर करने के लिए मुक्तिबोधजी ने अन्धेरों को आधार बनाया और कविता उतरती चली गयी..

मुक्तिबोध द्वारा रचित "अंधेरे में" जिन्हें-आठ भागों में कलमबद्ध किया गया है.इसमें शायद ही कोई कविता ऎसी होगी,जिसमें "अन्धकार" का प्रयोग न हुआ हो.यानी हर कविता अन्धेरे में गुंथी गई है. यथा=

१. जिन्दगी के...कमरों के अंधेरे...लगाता है चक्कर...कोई लगातार.
२. बाहर शहर के, पहाडी के उस पार...अंधेरा सब ओर.
३. अरे,अरे तालाब के आसपास अंधेरे में वन वृक्ष.
४. किसी काले डैश की घनी पट्टी ही आंखों में बंध गई
५. सूनापन सिहरा...अंधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे....शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की...मेरे ही डर पर धंसती हुई सिर...छटपटा रही है शब्दों की लहर.
६. प्रोशेसन ?..नरतब्द्ध नगर के मध्य रात्रि अंधेरे में सुनसान...किसी दूर बैण्ड की दबी हुई क्रमागत ताल-धुन
७. किंतु वे उद्यान कहां है...अंधेरे में पता नहीं चलता...मात्र सुगन्ध है सब ओर... पर, उस महक-लहर में...कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता...छटपटा रही है.
८. भूमि की सतहों के बहुत-बहुत नीचे...अंधियारी एकान्त...प्राकृत गुहा एक...विस्तृत खोह के सांचले तल में
९. भयानक सिपाही जाने किस थकी हुई झोंक में...अंधेरे में सुलगाता सिगरेट अचानक...तांबे से चेहरे की ऎंठ झलकती...पथरीली सलवट.

हिन्दी साहित्य में सवाधिक चर्चा के केन्द्र में रहने वाले मुक्तिबोध कहानीकार,समीक्षक,स्वातंत्र्योत्तर प्रगतिशील काव्यधारा के शीर्ष व्यक्तित्व थे. उन्हें प्रगतिशील कविता और नयी कविता के बीच का सेतु भी माना जाता है. तारसप्तक के वे पहले कवि थे, जिसे अज्ञेय एक विशिष्ठ स्थान देते हैं. मनुष्य की अस्मिता, आत्मसंघर्ष और प्रखर राजनैतिक चेतना से समृद्ध उनकी कविता पहली बार " तार सप्तक" के माध्यम से ही आयी थी, लेकिन कोई स्वंतत्र काव्य-संग्रह उनके जीवन काल में प्रकाशित नहीं हुआ. मृत्यु से पहले श्रीकांत वर्मा ने उनकी " एक साहित्यिक की डायरी" प्रकाशित की थी, जिसका दूसरा संस्करण "भारतीय ज्ञानपीठ" से उनकी मृत्यु के दो महीने बाद प्रकाशित हुआ..सन चौसठ में नागपुर के "विश्वभारती" प्रकाशन ने नयी कविता तथा अन्य निबन्ध प्रकाशित किए. भारतीय ज्ञानपीठ से "काठ का घोडा", लघु उपन्यास "विपात्र" प्रकाशित हुए. सन अस्सी में उनकी कविताओं का दूसरा संकलन "भूरी भूर खाक घूल" तथा राजकमल ने छः खण्डों में "मुक्तिबोध रचनावली" पेपरबैक में प्रकाशित की.

इसके बाद तो जैसे मुक्तिबोध की किताबें धडाधड प्रकाशित की जाने लगीं. " मुक्तिबोध की काव्य प्रक्रिया" अशोक चक्रधर द्वारा १९७५ में प्रकाशित,, कविता विषयक चिंतन और आलोचना पद्दति को विकसित और समृद्ध करने, साहित्यिक की डायरी, कविता का आत्मसंघर्ष, नए साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, भारत का इतिहास और संस्कृति इतिहास, काठ का सपना तथा सतह से उठता आदमी कहानी संग्रह.

बार-बार नौकरियां छोडने वाले इस शख्स ने पत्रकारिता के अलावा शिक्षिकी भी की थी. उनके सहपाठियों में वीरेन्द्रकुमार जैन, प्रभाग शर्मा ,रमाशंकर शुक्ल आदि थे जिन्होंने उन्हें निरन्तर प्रोत्साहित करने का काम किया.

श्री नेमीचंद जैन, प्रभाकर माचवे ने शुजालपुर में बैठकर "तार-सप्तक" की परिकल्पना की थी, जो सन १९४३ में अज्ञेय के सम्पादन में प्रकाशित हुआ. इस संग्रह में मुक्तिबोध प्रथम स्थान पाते हैं, माने तारसाप्तक की शुरुआत इन्ही से होती है. १९४५ के लगभग मुक्तिबोध बनारस गए और त्रिलोचन शास्त्रीजी के साथ "हंस" के सम्पादन में शामिल हुए.. उन्हें काशी रास नहीं आयी. भारतभूषण अग्रवाल और नेमिचन्द्र जैन ने उन्हें कलकत्ता बुलाया,लेकिन कोई बात नहीं बनी. हारकर वे जबलपुर चले आए और हितकारिणी हाई स्कूल में अध्यापक हो गए. मुझे उस समय बडा आत्मगौरव सा महसूस हुआ था, जब मुझे यहाँ नौकरी करते हुए कई बार आने के सुअवसर प्राप्त हुए थे.

१९५८ में वे राजनांदगांव के दिग्विजय कालेज में प्राध्यापक होकर आए और मृत्यु पर्यन्त तक यहीं रहे. मुक्तिबोध की स्मृतियों को अक्षुण्य बनाने के लिए छत्तीसगढ राज्य सरकार ने इसे "स्मारक" घोषित कर दिया. आश्चर्य इस बात पर कि तत्कालीन सरकार दक्षिणपंथी विचारधारा की थी, जबकि मुक्तिबोध वामपंथी विचारक थे.

डा. नामवरसिंह मुक्तिबोध के बारे में लिखते हैं=" नई कविता में मुक्तिबोध की जगह वही है जो छायावाद में निराला की थी. निराला के समान ही मुक्तिबोध ने भी अपनी युग के सामान्य काव्य-मूल्यों को प्रतिष्ठित करने के साथ ही उनकी सीमा को चुनौती देकर उस सर्जानात्मक विशिष्ठता को चरितार्थ किया, जिससे समकालीन काव्य का सही मूल्यांकन हो सका है.

शमशेर बहादुर सिंह लिखते हैं" मुक्तिबोध हिन्दी संसार की एक घटना बन गए. कुछ ऎसी घटना जिसकी ओर आँख मूंद लेना असम्भव था. उनका एकनिष्ठ संघर्ष, उनकी अटूट सच्चाई, उनका पूरा जीवन सभी एक साथ हमारी भावनाओं के केन्दीय मंच पर सामने आए और सभी ने उनके कवि होने को नई दृष्टि से देखा. कैसा जीवन था वह और ऎसे उसका अंत क्यों हुआ. और वह समुचित ख्याति से अब तक वंचित क्यों रहा?."

मुक्तिबोध पर मित्र जयप्रकाश लिखते हैं-" महलनुमा घर और किले के वातावरण में रहने के बोझ ने मुक्तिबोध की निम्नवर्गीय आत्मचेतना को दबा नहीं डाला बल्कि किले के इतिहास और उसकी स्मृतियों को अपने वर्गीय आत्मबोध के प्रतिमानों पर परखने को विकलता से भर दिया था. इस इतिहास और स्मृति के भीतर किसानों का संघर्षऔर जुझारू योद्धाओं का बलिदाब था. उनके प्रहारों से अंततः किले के ढह जाने की नियति थी सच पूछा जाए तो सामंती अंहकार और मिथ्यागर्व के ढह जाने का विश्वास एक सुसंगत इतिहास-बोध से उपजा था. मुक्तिबोध यदि लिख सके कि " अपनी मुक्ति के रास्ते/अकेले में नहीं मिलते" तो इसलिए के वे गौरव-प्रतीकों के जर्जर होकर गिर पडने की अनिवार्यता को और उसके पीछॆ सक्रिय कारणॊं को- जनता के सामूहिक संघर्ष की शक्ति को- पहचान रहे थे. वे पूरे मन से उसके साथ थे."

"अंधेरे में" तथा "ब्रह्मराक्षस" मुक्तिबोध की ऎसी गूढ कविताएं हैं, जिन्हें पढकर मुझे लगता है कि मुक्तिबोध का कवि इस गहरे तनाव के दवाब से मुक्त होने के लिए नहीं,बल्कि उन बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से, उन अनसुलझे प्रश्नों को सामने लाना चाहते थे, जो उन्हें अन्दर से बैचैन और व्यथिथ करते रहे हैं. ब्रह्मराक्षस द्वारा अपनी देह को बार-बार मलते हुए मैल छूडाने की बात से इसे समझा जा सकता है. देह का मैल तो एक बारगी छूट भी जाएगा,लेकिन आत्मा पर पडॆ मैल को किस तरह धो पाएंगे?

ब्रह्मराक्षस
बावड़ी की उन गहराइयों में शून्य
ब्रह्मराक्षस एक पैठा है,
व भीतर से उमड़ती गूँज की भी गूँज,
हड़बड़ाहट शब्द पागल से।
गहन अनुमानिता
तन की मलिनता
दूर करने के लिए प्रतिपल
पाप छाया दूर करने के लिए, दिनरात-
स्वच्छ करने--
ब्रह्मराक्षस
घिस रहा है देह
हाथ के पंजे बराबर,
बाँहमुँह छपाछप-छाती-
खूब करते साफ़,
फिर भी मैल
फिर भी मैल!! (ब्रह्मराक्षस)

मुक्तिबोध नागपुर से राजनांदगांव हडबडी में आए थे, मानों अपना बचा हुआ जीवन,जितनी जल्दी हो सके,जी लेना चाहते थे. उनकी मनोदश पर शरद कोठारी ने विस्तार से लिखा है. अपनी मनोदशा को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था" पार्टनर मेरे पास समय बहुत कम है और मैं अपना सारा काम पूरा कर लेना चाहता हूँ"

शायद उन्होंने अपना होम-वर्क पूरा कर लिया था. लेकिन उनकी निगाहों में सामंती सत्ता के भग्न प्रतीकों और स्वतंत्र भारत के औदयोगिक विकास के केंद्रों के बीच उभरते जन-संघर्षो- हडताल, जुलूस, नारेबाजी-घेराबंदी और फ़िर दनादन गोलियां उगलती बंदूकों की ओर थी. भारत का वर्तमान आज भी उन यक्ष प्रश्नों से बाहर कहां निकल पाया है? आने वाले समय में जो सपना मुक्तिबोध की आँखों ने संजोया/देखा था, क्या वह निकट भविष्य में साकार हो पाएगा?.

………

प्रेमचन्द

उनका अपना जीवन खुद उपन्यास था.

सन 1920 का दौर. गांधीजी के रुप में देश ने एक ऐसा नेतृत्व पा लिया था,जो सत्य के आग्रह पर स्वतंत्रता हासिल करना चाहता था. ऐसे समय में गोरखपुर में एक अंग्रेज इंस्पेक्टर जब अपनी जीप से गुजर रहा था तो अकस्मात एक घर के सामने आरामकुर्सी पर लेटॆ अखबार पढ़ रहे एक अध्यापक को देखकर जीप रुकवाली और बड़े रौब से अर्दली से उस अध्यापक को बुलवाने को कहा. पास आने पर उसने उसी रौब से पूछा;- "तुम बडॆ मगरुर हो. तुम्हारा अफ़सर तुम्हारे दरवाजे के सामने से निकल जाता है और तुम उसे सलाम नहीं करते." उस अध्यापक ने जवाब दिया;-"जब मैं स्कूल में रहता हूँ, तब नौकर हूँ, बाद में अपने घर का बादशाह. अपने घर का बादशाह यह सख्सियत और कोई नहीं वरन उपन्यास सम्राट प्रेम्चन्द थे,जो उस समय गोरखपुर में सरकारी नार्मल स्कूल में सहायकमास्टर के पद पर कार्यरत थे.

सन 1880 में बनारस के पास लम्ही में जन्में प्रेमचन्द का असली नाम धनपतराय था. बचपन से ही उन्होंने संघर्ष की जो दास्तां देखी,वो कालान्तर में साहित्य में प्रतिबिम्बित हुई. मात्र 8 वर्ष की अल्पायु मे मातृ-वियोग एवं पश्चात पिता द्वारा दूसरा विवाह अव चौदह वर्ष की आयु तक आते-आते पितृ-वियोग ने प्रेमचन्द कॊ जीवन के मझधार में अकेला छोड दिया. ऐसे में सौतेली मां एवं उसके दो बच्चों का भार भी उन्हीं के कंधो पर आ पडा.. पत्नि-पक्ष से भी उन्हें कोई सुखद अनुभूति नहीं हुई. पिताजी अपनी मृत्यु के पूर्व ही उनकी शादी उनसे उम्र में बडी लडकी से कर गए थे,जो बदसूरत होने के साथ ही जुबान की कडवी थी. अंततः प्रेमचन्द ने गृह-कलह से तंग आकर पत्नि को उसके मायके में छॊड दिया. घरवालों ने उन्हें दूसरी शादी करने हेतु जोर दिया. ना-ना करते वह शादी को तैयार हुए, पर एक शर्त के साथ कि विवाह वह किसी विधवा के साथ ही करेंगे. घरवालों कि नापसंदगी के बावजूद उन्होंने समाज के बंधे बंधाए नियमों को ठुकराकर व बिना घरवालों को बतलाए शिवरानी नामक एक महिला से शादी कर ली, जो कि विवाह के मात्र तीन-चार माह बाद ही विधवा हो गई थी.

इसमें कोई शक नहीं कि प्रेमचंद का जीवन दुखों व संघर्षों से भरा रहा. अपने जीवन में भोगे गए यथार्थ को ही पन्ने पर विविध रुपों में ढालकर अभिव्यक्त करते रहे." उपन्यास सम्राट" की उपाधि से प्रसिद्ध प्रेमचंद का जीवन खुद एक जीता-जागता उपन्यास था, जिसमें जिन्दगी के अन्तरद्वन्दों के बीच एक कृष्काय व्यक्ति मजबूती के साथ खडा नजर आता है. वह स्वभाव से ही अन्तर्मुखी थे. सभा-सम्मेलनों में वे मुश्किल से जाते थे. यह वह दौर था जब लोग स्वतंत्रता आंदोलन में खुलकर भाग ले रहे थे. वहीं प्रेमचंद की कलम समाज की आंतरिक विसंगतियों व बुराई पर चला रहे थे.

माता-पिता की असमय मृत्यु के कारण शिक्षा पाने के लिए काफ़ी संघर्ष करना पडा. पिता की मृत्यु के समय वे बनारास में नवीं कक्षा में अध्ययनरत थे. ट्युशन पढाकर व रात में कुप्पी के सामने बैठकर प्रेमचंद ने किसी तरह बी.ए. तक की शिक्षा ग्रहण की. सन 1900 के दौर में जीवकोपार्जन की खातिर उन्होंने स्कूल मास्टर की नौकरी ज्वाइन की, एवं 1901 से उपन्यास लिखना शुरु किया. कालान्तर में 1907 के दौर में वे कहानी भी लिखने लगे. उर्दू में वे नवाबराय के नाम सेलिखते रहे,पर 1910 में अपनी कहानी " सोजेवतन" की जब्ती के बाद उन्होंने प्रेमचंद के नाम से लिखना प्रारंभ किया.

प्रेमचंद लंबे समय तक नौकरी नहीं कर सके. फ़रवरी 1921 में उन्होंने इस्तिफ़ा दे दिया. यह वह दौर था जब गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन अपने चरम पर था. उनके आव्हान पर लोगों ने सरकारी नौकरियां- उपाधियां त्याग दी थी. 12 फ़रवरी 1921 को गोरखपुर मे घटित चौरी-चौरा काण्ड जिसमें आंदोलानकारियों ने उत्तेजित होकर 21 पुलिसवालों सहित समूचे थाने को जला दिया था. प्रतिक्रियास्वरुप गांधीजी ने हिंसा की निंदा करते हुए असहयोग आंदोलन वापिस लेने की घोषणा कर दी. उस समय प्रेमचंद गोरखपुर में गवरमेंट नार्मल स्कूल में सहायक मास्टर के पद पर कार्यरत थे.

चौरी-चौरा काण्ड के ठीक चार दिन बाद 16 फ़रवरी1921 को प्रेमचंद ने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया .तब उन्होंने अपना पूरा ध्यान साहित्य-रचना पर केन्द्रीत किया. सन 1923 में सरस्वतीप्रेस की स्थापना व सन 1930 में हंस पत्रिका के प्रकाशन एवं कालान्तर में वे "प्रगतिशील लेखक संघ" के अध्यक्ष बने. अपनी लेखनी के माध्यम से विभिन्न सामाजिक संस्थानों व विसंगतियों पर उपन्यास –नाटकों व कहानियों के माध्यम से प्रकाश डाला.

उनके उपन्यासों में गोदान, गबन, निर्मला, सेवासदन, रंगभूमि, प्रेमाश्रय, प्रतिज्ञा, कायाकल्प,कर्मभूमि, अहंकार इत्यादि प्रमुख हैं. उपन्यास व कहानियों के अलावा उन्होंने कर्बला, संग्राम, प्रेम की वेदी इत्यादि नाटक भी लिखे.

प्रेमचंद ने 19 वीं सदी के अंतिम दशक से लेकर 20 वीं सदी के लगभग तीसरे दशक तक भारत में फ़ैली तमाम सामाजिक बुराइयों, समस्याओं पर कलम चलाई. चाहे वह किसानों –मजदूरों एवं जमीदारों की समस्या हो, चाहे छुआछूत अथवा नारी-मुक्ति का सवाल हो, चाहे नमक का दरोगा के माध्यम से फ़ैले इंस्पेक्टर राज का जिक्र हो, कोई भी अध्याय उनकी नजरों से बच नहीं सका. यही कारण है कि प्रेमचंद को हर शख्स अपने करीब पाता है और अलग-अलग रुपों में व्याख्या करता है. असहयोग आंदोलन के दौरान गंधीजी से प्रभावित होकर नौकरी से इस्तिफ़ा देने के कारण उन्हें गांधीवादी कहा, सम्यवादी अथवा वामपंथी कहा गया, तो समाज मे व्याप्त छुआछूत व दलित की स्तिथि पर लेखनी, चलाने के कारण उन्हें दलित समर्थक कहा गया, तो नारी-मुक्ति को प्रशय देने के कारण नारी समर्थक कहा गया. लेकिन अफ़सोस के साथ कहना पड रहा है कि उनके उपन्यास "रंगभूमि" की प्रतियों को जलाकर व "कफ़न" जैसी रचना को आरोपित कर उन्हें मानुवादी अथवा दलित विरोधी कहा गया.

आज प्रेमचंद की प्रासंगिकता इसलिए भी कायम होती है कि आधुनिक साहित्य के स्थापित मठाधिशों के नारी=विमर्श एवं दलित-विमर्श जैसे तकिया-कलामों के बाद भी अंततः लोग इनके सूत्र, किसी न किसी रुप में प्रेमचंद की रचनाओं में ढूढते नजर आ रहे हैं.

यद्दपि यह शख्स 18 अकटूबर 1936 को ही शारीरिक रुप से इस संसार को अलविदा कर गया- पर अभी भी साहित्यिक मंडलियों की चर्चा का केन्द्र बिन्दु है. वह आज भी साहित्य का केन्द्र-बिंदु बना" साहित्य-सम्राट" है. ऐसे साहित्य-सम्राटको हमारा शत-शत नमन—विनम्र श्रद्धाजंलि
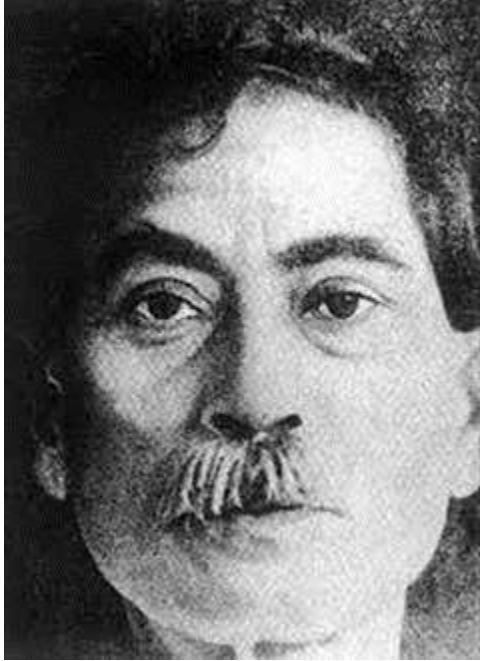
कथा सम्राट मुंशी प्रेमचंद की जयंती पर उनकी दो लघुकथाएं (31 जुलाई-1880) **(प्रस्तुति : गोवर्धन यादव)**

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा:- देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सलूक, पतितों के साथ बराबरी का बर्ताव, दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीचा नहीं, कोई ऊँचा नहीं.

दुनिया ने जयजयकार की---कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय ! उसकी सुन्दर लडकी इन्दिरा ने सुना और चिंता के सागर में डूब गई. राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया. दुनिया ने कहा- "यह फ़रिश्ता है, पैगम्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है." इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा. राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मन्दिर में ले गया, देवता के दर्शन कराए और कहा- "हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है,परस्ती में है."

इन्दिरा ने देखा और मुस्कराई. इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली- "श्रद्धेय पिताजी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ." राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा-"मोहन कौन है ?". इन्दिरा ने उत्साह भरे स्वर में कहा-" मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मन्दिर ले गए, जो सच्चा, बहादुर और नेक है".

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आंखों से उसकी ओर देखा और मुंह फ़ेर लिया.

देवी

रात भीग चुकी थी. मैं बरामदे में खडा था. सामने अमीनुद्दौला पार्क नींद में डूबा खडा था. सिर्फ़ एक औरत एक तकियादार बेंच पर बैठी हुई थी. पार्क के बाहर सडक के किनारे एक फ़कीर खडा राहगीरों को दुआयें दे रहा था-" खुदा और रसूल का वास्ता....राम और भगवान का वास्ता....इस अन्धे पर रहम करो". सडक पर मोटरों और

सवारियों का तांता बन्द हो चुका था. इक्के-दुक्के आदमी नजर आ जाते थे., फ़कीर की आवाज जो पहले नक्कारखाने में तूती की आवाज थी, जब खुले मैदानों की बुलन्द पुकार हो रही थी. एकाएक वह औरत उठी और इधर-उधर चौकन्नी आंखों से देखकर फ़कीर के हाथ में कुछ रख दिया और फ़िर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ़ चली गई. फ़कीर के हाथ में कागज का एक टुकडा नजर आया जिसे वह बार-बार मल रहा था. क्या उस औरत ने यह कागज दिया है?.यह क्या रहस्य है?. उसको जानने के कुतूहल से अधीर होकर मैं नीचे आया और फ़कीर के पास जाकर खडा हो गया. मेरी आहट आते ही फ़कीर ने उस कागज के पुर्जे को उंगलियों से दबाकर मुझे दिखाया और पूछा-"बाबा, देखो यह क्या चीज है?."

मैंने देखा-दस रुपये का नोट था. बोला-"दस रुपये का नोट है, कहाँ पाया ?". मैंने और कुछ न कहा. उस औरत की तरफ़ दौडा जो अब अन्धेरे में बस एक सपना बनकर रह गई थी. वह कई गलियों में होती हुई एक टूटे-फ़ूटे मकान के दरवाजे पर रुकी, ताला खोला और अन्दर चली गई.

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मैं लौट आया. रात भर जी उसी तरफ़ लगा रहा. एकदम तडके फ़िर मैं उस गली में जा पहुंचा. मालूम हुआ, वह एक अनाथ विधवा है. मैंने दरवाजे पर जाकर पुकारा-"देवी, मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ.". औरत बाहर निकल आयी-गरीबी और बेकसी की जिन्दा तस्वीर. मैंने हिचकते हुए कहा-" रात आपने फ़कीर को.........". देवी ने बात काटते हुए कहा—" अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पडा मिल गया था, मेरे किस काम का था."

मैंने उस देवी के कदमोंपर सिर झुका दिया.

--

....

4

प्रसंगवश

मदर टेरेसा जयन्ती पर विशेष (26 अगस्त 2012)

दया-ममता-करुणा-त्याग और सेवा की बेजोड प्रतिमूर्ति

समय-समय पर संसार में कई महान विभूतियों ने जन्म लेकर मानवता के कल्याण मात्र के कार्यों के प्रति अपना जीवन समर्पित किया है. मानवता के प्रति प्रेम-दया-करुणा-त्याग की भावना इन महानविभूतियों में सर्वनिष्ठ रही है. इन्हीं में एक नाम शामिल है मदर टेरेसा का. मदर टेरेसा का संपूर्ण जीवनउपेक्षितों,निराश्रितों,व असहायों के

कल्याण कार्य के प्रति समर्पित रहा. २७ अगस्त १९१० को युगोस्लाविया के स्कोप्जे नामक छोटे से नगर में एक मध्यमवर्गीय परिवार में उनका जन्म हुआ. इस नन्हीं सी बालिका का नाम "एग्नेस गोन्हा बोजाहिय "रखा गया. माता-पिता की धर्मिक प्रवृति का नन्हीं बालिका एग्नेस पर बहुत प्रभाव पडा. बचपन से ही नर्स बनकर सेवा-सुश्रुषा करने की ललक एग्निस के अन्तःस्थल मे गहरी पैठ गई और अठारह वर्ष की उम्र मे एग्नेस ने नन का चोला पहन लिया.

६ जनवरी १९२९ को अग्नेस भारत पहुँची. २ वर्ष प्रार्थणा,चिंतन व अध्ययन में बिताने के पश्चात उन्होंने टेरेसा का नाम धारण किया. सन १९३१ में कलकत्ता (अब कोलकता) में टोरेन्टो कान्वेंट हाईस्कूल में भूगोल की अध्यापिका के रुप में उन्होंने नया मिशनरी जीवन शुरु किया. बाद में वे उसी स्कूल की प्राचार्या बनीं.

अपनी यात्रा के दौरान गरीबों-असहायों की दुर्दशा देखकर द्रवित हो उठी और उन्होंने अपनी अन्तरात्मा की आवाज पार अपना जीवन निर्धनों-दलितों व पीढित मानवता की सेवा में लगाने का निश्च्चय किया. उन्होंने कोलकाता के तत्कालीन आर्कबिषप परेरा व पोप से कान्वेंट छोडने की अनुमति ली और पटना आ गई. पटना मे उन्होंने "अमेरिकन मेडिकल सिस्टर्स "से नर्सिंग पाठ्यक्रम किया. नर्स के तीन वर्ष के प्रशिक्षण को उन्होंने मात्र तीन माह में ही प्राप्त कर लिया था.

सर्वप्रथम इन्होंने कोलकाता की तेलजला और मोतीझील नामक दो गंदी बस्तियों मे अपना सेवा कार्य प्रारंभ किया. श्री माइकल गोम्स की सहायता से उन्होंने २१ सितम्बर १९४८ को मोती झील क्षेत्र में स्यालदाह रेल्वे स्टेशन के समीप गरीब बच्चों के लिए पहला स्कूल खोला. बाद में एक मन्दिर के समीप स्थित धर्मशाला में इन्हें जगह मिल गई,जिसे उन्होंने " निर्मल हृदय" नाम दिया तथा वृद्ध व असाध्य रोगियों की चिकित्सा की. इसके पश्चात उन्होंने परित्यक्त व अनाथ बच्चों ,के लिए " निर्मल शिशु भवन" की शुरुआत की.

सन् १९५१ मे आपाने रोगियों के पुनर्वास के लिए कुष्ठ निवारण केन्द्र की स्थापना की और एक चलित औषधालय की भी शुरुआत की. उनके समर्पण के भाव को देखकर पश्चिम बंगाल की सरकार ने आसनसोल के समीप ३४ एकड जमीन प्रदान की,जहां उन्होंने "शांति नगर" की स्थापना की. यहां उन्होंने कुष्ठ रोगियों को समाज मे यथोचित स्थान दिलाने के लिए प्रशिक्षित भी किया. फ़िर जरुरतमंद महिलाओं के लिए " प्रेमद्धाम" की भी स्थापना की. यहां काम करके महिलाएं आत्मसम्मान तो पाती ही थी,साथ ही अपनी जीविका के लिए धनोपार्जन भी करती थीं.

इनका सेवा कार्य एक जगह ही सीमित नहीं रहा वरन भारत के अनेक नगरों के साथ-साथ विदेशों में भी सेवा गतिविधियों का विस्तार होता रहा.

सन १९५० में आपने "मिशनरीज आफ़ चेरिटीस" ,नामक संस्था का गठन किया .इस संगठन में हजारों की संख्या में पुरुष व महिलाकर्मी भी सेवारत हैं. मदर ने सदैव बच्चों को ईश्वर की देन माना. वे गर्भपात के सख्त खिलाफ़ थीं उनका कहना था कि :-"ईश्वर ने हर बच्चे को महान कार्यों के लिए सिरजा है,प्यार देने और पाने के लिए वह ईश्वर का ही स्वरुप होता है".

सन १९४८ में उन्होंने भारत की नागरिकता ग्रहण की थी. आचार -विचार-सोच में वे सच्ची भारतीय रहीं. एक बार,एक व्यक्ति ने उनकी नागरिकता को लेकर प्रश्न किया तो बजाय नाराज होने के अथवा क्रुद्ध होने के उन्होंने मुस्कुराते हुए उस व्यक्ति को जबाब दिया:-"मैं मन से भारतीय हूँ और संयोग से आप भी भारतीय़ हैं".

आपको समय-समय पर सम्मानित किया गया. भारत का सर्वोच्च सम्मान" भारत रत्न" से आपको सम्मानित किया गया,जिसमें नोबेल शांति पुरस्कार भी शामिल है.

पांच सितम्बर सन १९९७ को आपका स्वर्गवास हो गया. एक पवित्र आत्मा का ईश्वर में विलय हो गया.

मदर ने अपने उद्बोधन में कहा था:-"दुनियां में गरीबी,दर्द और उपेक्षा हर कहीं विद्धमान है,चाहे अमेरिका हो या बांग्लादेश,आस्ट्रेलिया हो या कि भारत,जरुरतमंदों की हर जगह असंख्य तादात है. हमारी लडाई भौतिक-गरीबी के खिलाफ़ नहीं है. हमारी जंग तो उपेक्षित एवं तिरस्कार से उत्पन्न होने वाली आध्यात्मिक गरीबी के खिलाफ़ है. इस गरीबी से निजात पाने के लिए भौतिक व्यवस्थाएं पर्याप्त नहीं है. केवल त्याग और प्रेम के शस्त्र से इस गरीबी पर विजय प्राप्त की जा सकती है. आवश्यकता से अधिक धन एकत्र हो जाने पर उसे गरीब को दान स्वरुप दे देना कोई बडी बात नहीं है. खून-पसीना बहाकर कमाए धन में से सुख-सुविधा में कटौती कर किसी को सहारा देना, उसकी पीडा व संघर्ष में शरीक होना है. ईश्वर को ऐसे दान प्रिय है".

मदर टेरेसा आज हमारे बीच नहीं है,लेकिन उनके उदगार हमारे बीच है. मदर की इस पावन जयन्ती पर हम संकल्प लें कि हम सभी मिलकर गरीबी-लाचारी का डटकर मुकाबला करेंगे और इस धरती से उसे सदा-सदा के लिए समाप्त कर देंगे.

मदर के सम्मान में डाक विभाग ने"प्रथम दिवस आवरण" जारी कर उन्हें सम्मान दिया था.

....

5

माँ तेरे अनेकों नाम

भाषा	संबोधन	भाषा	संबोधन
हिन्दी	माँ, मांजी, माता	मराठी	आई
अफ़्रीकन	मोइदर, मां	अरेबिक	अम
अल्बेनियन	मेमे,नेने,बरिम	आइरिश	मदेर
बोस्नियन/बाल्गारियन	माज्का	फ़्रेंच	मिअर्म, ममन

जर्मन	मटर	मंगोलियन	इह
उर्दू	अम्मी	इंगालिश	मदर, मम्मी,माम
इटालियन/ पर्शियन	माद्रे, मम्मा	पुर्तगाली	माइ
बेलारुसियन	मैत्का	सर्बियन	मज्का
ग्रीक	माना	हवालियन	मैकुअहिन
हंगेरियन	अन्या, फु	इंडोनेशियन	इंडक, इबु
चेचेन	नना	जापानीज	ओकासन, हाहा
लाइटिन	मेटर	पोलिश	मात्का, ममा
रोमेनियन	ममा, माइका	रशियन	मैट
स्वीडिश	ममा, मोर, मोर्सा	टर्किश	अन्ने, अना, वालिदे
यूक्रेनियन	माती.	ब्राजिलियन	माइ

6- मित्र और अमित्रो की पहचान (महाभारत के शांति पर्व से)

मित्र और अमित्रो की पहचान (महाभारत के शांति पर्व से)

युधिष्ठिर ने पूछा - पितामह ! छोटे से छोटा काम भी अकेले किसी की सहायता के बिना करना कठिन हो जाता है. फिर राजा का कार्य तो दूसरे की सहायता लिए बिना हो ही कैसे सकता है ? इसलिए मंत्री का होना आवश्यक है. अब आप बताइए राजा का मंत्री कैसा होना चाहिए? उसका स्वभाव और आचरण किस तरह का हो, कैसे व्यक्ति पर विश्वास किया जाया और कैसे पर नहीं?

भीष्मजी ने कहा - राजा के चार प्रकार के मित्र होते है - सहार्थ (जो किसी शर्त पर एक दुसरे की सहायता के लिए मित्रता करते है), भजमान (जिनके साथ पुश्तैनी मित्रता हो), सहज (जिनके के साथ नजदीकी रिश्तेदारी हो उन्हें सहज मित्र कहते है), और कृत्रिम (धन आदि देकर अपनाए हुए लोग होते है). पाचवा मित्र धर्मात्मा होता है, वह किसी एक का पक्षपाती नहीं होता और न दोनों पक्षों से वेतन लेकर कपटपूर्वक दोनों का ही मित्र बना रहता है. जिधर धर्म का पल्ला मजबूत रहता है उसी पक्ष का वह आश्रय ग्रहण करता है अथवा जो राजा धर्म में स्थित होता है वही उसे अपनी ओर खीच लेता है.

उपर्युक्त मित्रो में से भजमान और सहज श्रेष्ठ समझे जाते है शेष दो की ओर से तो सदा सशंक रहना चाहिए. वास्तव में अपने कार्य को द्रष्टि में रख सब प्रकार के मित्रो से ही सावधान रहना चाहिए. राजा को मित्रो की रक्षा करने में कभी असावधानी नहीं करनी चाहिए क्योकि असावधान राजा का सब लोग तिरस्कार करते है.
मनुष्य का चित्त चंचल होता है, भला मनुष्य बुरा और बुरा भला हो जाया करता है, शत्रु मित्र और मित्र शत्रु बन जाता है, अतः किस पर कौन विश्वास करे?

इसलिए मुख्य-मुख्य कार्यो को दूसरो पर न छोड़कर अपने सामने ही करना चाहिए. किसी पर भी पूरा-पूरा विश्वास कर लेने से धर्म और अर्थ दोनों का नाश होता है. दूसरो पर पूरी तरह विश्वास करना अकाल म्रत्यु को मोल लेना है, अन्धविश्वासी को विपत्ति में पड़ना पड़ता है. वह जिस पर विश्वास करता है उसी की इच्छा पर उसका जीना निर्भर रहता है. इसलिए राजा को कुछ लोगो पर विश्वास भी करना चाहिए और उनकी ओर से सतर्क भी रहना चाहिए. यही सनातन राजनीती है.

अपने अभाव में जिस मनुष्य का राज्य पर कब्ज़ा हो सकता हो उससे सदा चौकन्ना रहा चाहिए क्योकि विज्ञ पुरुषो ने उसकी शत्रुओ में गणना की है.
जो मनुष्य राजा का अभ्युदय देख उसकी और भी अधिक उन्नति चाहे और अवनत होने पर बहुत दुखी हो जाय वही उत्तम मित्र है.
अपने न रहने पर जिस व्यक्ति को विशेष हानि पहुचने की सम्भावना हो उस पर पिता के समान विश्वास करना चाहिए. और जब अपने धन की वृद्धि हुई हो तो यथा शक्ति उसको भी समृद्ध शाली बनाना चाहिए. जो धर्म के कामो में भी राजा को नुकसान से बचने का ध्यान रखता है उसकी हानि देखकर जिसको भय होता है उस ही उत्तम मित्र समझो नुकसान चाहने वाले तो शत्रु भी बनाये गए है.
जो मित्र की उन्नति देखकर जलता नहीं और विपत्ति देखकर घबरा उठता है वह मित्र अपने आत्मा के सामान है. जिसका रूप रंग सुन्दर और स्वर मीठा हो जो क्षमाशील, ईर्ष्या रहित , प्रतिष्ठित और कुलीन हो उसकी श्रेणी पूर्वोक्त मित्र से भी बढ़कर है.
जिसकी बुद्धि अच्छी और स्मरण शक्ति तीव्र हो, जो कार्य साधने में कुशल और स्वभावतः दयालु हो, कभी मान या अपमान हो जाने पर जिसके ह्रदय में दुर्भाव नहीं आता ऐसा मनुष्य यदि अत्यंत सम्मानित मित्र हो तो उसे तुम अपने घर में मंत्री बनाकर रख सकते हो वह तुम्हारे विशेष आदर का पात्र है.. उसको राजकीय गुप्त विचारो तथा धर्म और अर्थ की प्रकृति से परिचित रखना. उसके ऊपर तुम्हारा पिता के सामान विश्वाह होना चाहिए.
एक काम पर एक ही व्यक्ति को नियुक्त करना दो या तीन को नहीं, क्योकि उनमे परस्पर अनबन हो जाने की सम्भावना रहती है कारण की एक कार्य पर नियुक्त हुए अनेक व्यक्तियों में प्रायः मतभेद होता ही है.

जो कीर्ति को प्रधानता देता और मर्यादा के भीतर कायम रखता है, शक्तिशाली पुरुषो से द्वेष और अनर्थ नहीं करता, कामना, भय, लोभ अथवा क्रोध से भी जो धर्म का त्याग नहीं करता जिसमे कार्यकुशलता तथा आवश्कता के अनुरूप बातचीत करने की पूरी योग्यता हो उसे तुम अपना प्रधान मंत्री बनाना . जो कुलीन, शीलवान, शहनशील, डींग न मारनेवाले, शूरवीर, आर्य, विद्वान तथा कर्तव्य अकर्तव्य को समझने में कुशल हो उन्हें अमात्य के पद पर बैठाना एवं सत्कारपूर्वक सुख और सुविधा देना. ये तुम्हारे अच्छे सहायक सिद्ध हे और सब तरह के कामो की देखभाल करेगे.

युधिष्ठिर तुम अपने कुटुम्बियो को मृत्यु के सामान समझकर उनसे सदा डरते रहना. जैसे पड़ोसी राजा अपने पास के राजा की उन्नति नहीं सह सकता, उसी प्रकार एक कुटुम्बी दुसरे कुटुम्बी का अभ्युदय नहीं देख सकता. जिसके कुटुम्बी या सगे संबंधी नहीं है उसको भी सुख नहीं मिलता इसलिए कुटुम्बी जनों की अवहेलना नहीं करना चाहिए. बंधू बांधव से हीन मनुष्य को दुसरे लोग दबाते है. यदि गैर आदमी अपने जातिवाले का अपमान कर रहा हो तो अपने जाती वाले के अपमान को वह अपना ही अपमान समझेगा. इस प्रकार कुटुम्बी जनों के रहने में गुण भी है

और अवगुण भी. कुटुंब का व्यक्ति न अनुग्रह मानता है न नमस्कार करता है. उनमे भलाई बुराई दोनों देखने में आती है.

राजा का कर्तव्य है की वह अपने जातीय बंधुओ का वाणी और क्रिया से सत्कार करे. सदा ही उनकी भलाई करता रहे, कभी कोई बुराई न होने दे. उनपर विश्वास तो न करे किन्तु विश्वास करनेवाले की भांति ही उनके साथ वर्ताव करे. उनमे दोष है या गुड इसकी चर्चा न करे. जो पुरुष सदा सावधान रहकर ऐसा बर्ताव करता है, उसके शत्रु भी प्रसन्न होकर उसके साथ मित्रता का बर्ताव करने लगते है. जो कुटुम्बी, सगे संबंधी , मित्र, शत्रु तथा उदासीन व्यक्तियों के साथ इस नीति के अनुसार व्यवहार करता है, उसका सुयश चिर काल तक बना रहता है

7

यूनिवर्सल पोस्टल युनियन

यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन को अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ के नाम से भी जाना जाता है. क्या आप बता सकते हैं कि इसका जन्म कब, कहां, कैसे और किसके द्वारा हुआ?. निःसंदेह आपके पास इसका उत्तर शायद ही होगा. आइये मैं इसकी विस्तृत जानकारी आपको उपलब्ध करवा रहा हूँ.

यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन की नींव मे एक नाम दबा पडा है. वह नाम है "हाईनरिश फ़ान स्टेफ़ान" का. आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य भी होगा कि ये महाशय एक डाककर्मी थे.

हाईनरिश फ़ान स्टेफ़ान का जन्म 7 फ़रवरी 1831 को पोमेरानिया में हुआ था. वे अपनी प्रारंभिक स्कूली शिक्षा के उपरांत 17 वर्ष की आयु मे प्रशियन डाक सेवा में भर्ती हुए थे. फ़ान अपने चुने हुए व्यवसाय में द्रुतगति से मंजिल दर मंजिल पार करते हुए कोलोन जा पहुँचे,जो राइन प्रदेशों की महानगरी तथाजर्मन, पश्चिम यूरोप एवं समुद्रपारीय देशों के बीच डाकसेवाओं का केन्द्र बिंदु थी. तत्पश्चात उनका अगला कदम कोलोन से प्रशिया की बर्लिन स्थित सर्वोच्य डाक प्रशासनिक संस्था मे पहुंचना था. जब सन 1870 में जनरल डाक निदेशक (जर्मनी के डाक प्रशासन का अध्यक्ष) का पद रिक्त हुआ तो फ़ान को उनकी दूर-दूर तक फ़ैली ख्याति तथा असाधारण योग्यताओं के कारण उक्त पद हेतु चुना गया.

फ़ांस-जर्मन युध्द के पश्चात फ़ान अपने जीवन के महानतम कार्य" अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ" की स्थापना में जुट गए. सन 1869 में उत्तरी जर्मन सरकार ने यूरोपीय राष्ट्रों के बीच डाक संबन्धों मे समानता एवं सामान्य डाकसंघ की स्थापना पर विचार-विमर्श हेतु डाक कांग्रेस आमंत्रित करने के लिए फ़ांस सरकार से एक समझौता किया. यह तभी संभव हो सका जबकि 1 जुलाई 1873 को जर्मन सरकार ने स्टेफ़ान द्वारा तैयार किया गया सामान्य डाक समझौते का प्रारुप यूरोपीय एवं अमरीकी सरकारों के समक्ष प्रस्तुत किया. 15 सितम्बर 1874 को दोनों गोलार्धों के 22 राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने बर्न (स्विटजलैण्ड) में राष्ट्रीय सीनेट के प्राचीन ऎतिहासिक भवन में

हुए कांग्रेस सम्मेलन में भाग लिया. कांग्रेस ने फ़ान स्टेफ़ान को समझौता प्रारुप की जांच हेतु स्थापित आयोग का अध्यक्ष नियुक्त किया. यह उनकी पहल शक्ति, कूटनीतिक चातुर्य तथा डाक मामलों के अंतरंग ज्ञान का ही परिणाम था कि सामान्य डाक समझौते पर 24 दिन की अल्पावधि में ही 9 अक्टूबर 1874 को हस्ताक्षर हो गए तथा इस प्रकार " सामान्य डाक संघ" का जन्म हुआ.

अब स्टेफ़ान ने अन्तर्राष्ट्रीय डाक संघ (यू.पी.यू) जैसा कि बाद में इसका नाम पडा के प्रसार कार्य में अपने आपको समर्पित कर दिया. उनका एकमात्र लक्ष्य था यू.पी.यू. की एकता, विवादों को रफ़ादफ़ा करने में उन्होंने अपनी वाकपटुता, दृढ इच्छा शक्ति, विश्वास की उर्जा तथा तर्क-शक्ति का प्रयोग किया.

यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन के संस्थापक फ़ान स्टेफ़ान का देहान्त 8 अप्रैल 1897 मे हो गया. आज भी इन्हीं के दिखाए मार्ग पर समूचा विश्व डाक प्रक्रिया मे जुडा हुआ है.

....

8 हिन्दी–देश से परदेश तक

भाषा अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम है. यह अभिव्यक्ति आमजन की अस्मिता से लेकर राष्ट्र के आगत भविष्य निर्माण के लिए भी हो सकती है. इसीलिए भाषा का प्रश्न केवल भाषा तक ही सीमित नहीं होता. हम जो सोचते हैं अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्त करते हैं और यह अभिव्यक्ति हमारी पहचान बनाती है. हमनें अपनी स्वतंत्रता की लडाई हिन्दी के माध्यम से जीती है. आमजन की भाषा की राष्ट्रीय गरीमा को प्रतिष्ठित करना एवं उसे कायम रखना है.

भाषा का निर्माण टकसाल में न होकर सडक पर होता है, चौपालों में होता है, गाँव के गलियारों में होता है और उसका शिल्पी देश का आमजन है. भाषा की समृद्धि एवं संपन्नता जन-जन की भाषा के प्रति सजगता ,सक्रीयता एवं जागरुकता पर निर्भर करती है. भाषा के विनाश एवं विकास में वही एकमात्र जिम्मेदार है.

भारत के कोने-कोने में बोली जाने एवं समझी जाने वाली हिन्दी ही एकमात्र भाषा है. सरल, और वैज्ञानिक लिपि में लिखी जाने के कारण हिन्दी भाषा अत्यन्त सुव्यवस्थित, संपन्न और लोकप्रिय है. भारत के अधिकांश भागों में प्रयोग किए जाने के कारण हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा का गौरव प्राप्त है. राष्ट्रभाषा के रुप में हिन्दी एक प्रदेश के लोगों को दूसरे प्रदेशों के लोगों से जोडती है, एवं संपर्क स्थापित करती है और राष्ट्रीय एकता का भाव जगाती है. हिन्दी की इसी विशिष्टता के कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने १४ सितम्बर १९४९ को देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को, संघ की राजभाषा के रुप में स्वीकार किया तथा २६ जनवरी १९५० को संविधान में इसका प्रावधान किया.

हिन्दी भाषा की एक नहीं,अनेक खूबियां है.

१/- हिन्दी एक सशक्त और सरल भाषा है.(२) हिन्दी देवनागरी लिपि मे ध्वनि-प्रतीकों(स्वर-व्यंजन) का क्रम वैज्ञानिक है (३) इसमे प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग चिन्ह है(४) इसमे केवल उच्चारित ध्वनियाँ ही लिखी जाती है.(५)जिस रुप में यह बोली जाती है, उसी रुप में लिखी भी जाती है.(६) हिन्दी जर्मनी की तरह अपने ही प्रत्ययों से नवीन शब्दों का निर्माण कर लेती है.(७) हिन्दी में क्रदंन्त क्रियायों को अधिक ग्रहण किया है, क्योंकि ये बहुत सरल एवं स्पष्ट होती है.(८) हिन्दी की संज्ञा-विभक्तियां सिर्फ़ पांच-सात ही हैं.(९)हिन्दी के सर्वनाम अपने हैं.(१०) हिन्दी में विशेषण के साथ अलग-अलग विभक्ति लगाने की जरुरत नहीं होती.(११) हिन्दी के अपने अव्यय हैं.

स्वाधीन भारत की नींव को सुद्दढ करने के लिए गांधीजी ने जितने काम किए,उनमें हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का काम भी प्रमुख स्थान रखता है,लेकिन गांधीजी की भाषिक मान्यताओं पर विमर्श करने से पूर्व यह भी जानना आवश्यक है कि क्या गांधीजी से पूर्व हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की आवाज किन लोगो ने उठाई थी? हाँ, गांधीजी से पूर्व हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की कोशिशे की गई थी. प्रख्यात फ़्रांसीसी विद्वान गार्साद तासी ने सन १८५२ के फ़्रांस के अपने भाषण मे हिन्दुओं-हिन्दुस्थानी को हिन्दुस्थान की लोक या सार्वदेशीय़ भाषा के रुप में रखा था. अंग्रेजी के प्रसिद्ध कोश " हिंदुस्थानी जाब्सन" में जिसका प्रकाशन सन १८८६ में लंदन में किया गया था, हिंदुस्थानी को सभी भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रभाषा माना गया, फ़िर तो गियर्सन जैसे अनेक लोग हिन्दी के सार्वदेशिक रुप को लेकर आगे आए.

स्वदेशी लोगों में सबसे पहले राजा राममोहन राय ने एक भाषण में संकेत दिया था कि श्री पेठे, जो मुंबई के कालेज में अध्यापक थे, ने मराठी में "राष्ट्रभाषा" नाम की पुस्तक सन १८६४ में लिखी, जिसमें हिन्दी भारत की आवश्यक भाषा के रुप में स्वीकार किया. बंगाल के महान धार्मिक नेता केशवचन्द्र ने अपने "सुलभ समाचार" नामक पत्र में भारत की एकता के लिए हिन्दी अपनाने की पूरी वकालत की थी. यही नहीं, श्री सेन ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सक्रीय सहयोग भी दिया. वैदिक धर्म के अनन्य प्रचारक और विद्वान स्वामी दयानन्द सरस्वती ने, जो पहले संस्कृत में ही प्रचार करते थे,४८ वर्ष की अवस्था में उन्हीं "सेन" के कहने से हिन्दी सीखी और उसी में सारा कार्य करने लगे. गुजराती के लल्लुजी"लाल" ने हिन्दी के प्रथम व्यवस्थित ग्रंथ " प्रेमसागर" की रचना की. १८७० के आसपास मराठी विद्वान हरिगोपाल पाण्डे ने " भाषा तत्व-दीपिका "संज्ञक" हिन्दी व्याकरण लिखा. प्रख्यात बंगला साहित्यकार बंकिमचन्द्र चटर्जी ने बंगाल के प्रसिद्ध साहित्यिक-पत्र "बंग.दर्शन" में १८१७ में एक आलेख लिखा, जिसमें राष्ट्रभाषा हिन्दी के बारे में अपने विचार द्दढता से व्यक्त किए. बंगाली शिक्षाविद भूदेव मुखर्जी ने प्रशासन से टक्कर लेकर बिहार की कचहरियों में नागरी तथा कैथि लिपियों को प्रवेश दिलाया और " आचार-प्रबन्ध" नामक अपनी पुस्तक में हिन्दी के सभी भारतीय भाषाओं की एकता का साधन-सूत्र बतलाया.

सन १९०० तक   आते-आते अनेक बंगाली,ब मराठी, गुजराती, हिन्दी समर्थकों और प्रचारकों की भीड खडी हो गई,जिसमे योगेन्द्रनाथ बसु अमृतलाल चक्रवर्ती ,सदाशिवराव, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सेठ गोविन्ददास आदि प्रमुख हैं. इस प्रयासों से बल पाकर जब राष्ट्रनायक जैसे "महिमंड" व्यक्तित्व के धनी गांधीजी ने हिन्दी भाषा के

प्रश्न को राजनैतिक दृष्टि से सामने रखा और उन्हीं के प्रयासों से जब इसे संविधान में "राष्ट्रभाषा" का पद मिला तो यह मान लिया गया कि वे इस क्षेत्र के अपूर्व नेता है.

भारतीय भाषा समस्या के विषय पर गांधीजी के विचार बडॆ निर्मल, वस्तुनिष्ठ और पूरी तरह व्यवहारिक हैं. वैसे भी उनके विचार प्रांजल और पारदर्शी होते हैं. जिस स्त्रोतों से उनके भाषा विषयक विचार उपलब्ध होते हैं, उनमें उनके लेखों का प्रमुख स्थान है, जो यंग इण्डिया, हरिजन-सेवक, हरिजन बन्धु आदि मे प्रकाशित हैं. इसके अतिरिक्त कुछ ऎसी सामग्री "इण्डियन होमरुल" जैसे पुस्तकों और तत्कालीन विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गए उनके पत्रों से मिली है. गांधीजी ने भाषा विषय में सबसे पहले अपने विचार १९०९ में अपनी पुस्तक "हिन्द-स्वराज" और होमरुल"के १८ वें परिच्छेद में यों व्यक्त किए हैं **" हर एक पढे-लिखे हिन्दुस्थानी को अपनी भाषा का, हिन्दु को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, पारसी को पर्शियन का और सबको हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए. कुछ हिन्दुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को हिन्दी का और कुछ पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए. उत्तर और पश्चिम में रहने वले हिन्दुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए. सारे हिन्दुस्थान के लिए तो हिन्दी होनी ही चाहिए. उसे उर्दू या नागरी लिपियां जानना जरुरी है. ऎसा होने पर हम अपने आपस में व्यवहार से अंग्रेजी को बाहर कर सकेंगे."**

गांधीजी की इन भाषिक मान्यताओं के पीछे लोक-संग्रहक संतुलन का भाव प्रमुख है. लोकभाव को अक्षत और अक्षुण्य रखते हुए उसके लिए वे कारगर तरीका अपनाने की बात कहते हैं, वह यह कि **भारत की प्रत्येक जाति का निवासी पहले तो अपने को ठीक से समझे, अपने जातीय संस्कार की भाषा को समझे, फ़िर दूसरे की भाषा का ज्ञान भी रखे, फ़िर सामाजिक या राष्ट्रीय सम्पर्क के लिए हिन्दी से भी अवगत हों.**

भंडोंच स्थित "गुजरात शिक्षा परिषद" में सभापति -पद से व्याख्यान देते हुए उन्होंने "**राष्ट्रभाषा की अवधारणा**" पर विस्तार से प्रकाश डाला." अगर गहरे पैठकर हम सोचें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि अंग्रेजी राजभाषा नहीं बन सकती और न ही उसे बनाना चाहिए. इसे ठीक से समझने के लिए हमें यह देखना चाहिए कि किसी भाषा में राष्ट्रभाषा बनने के लिए क्या-क्या बातें आवश्यक है, ऎसी पांच बातें हैं जो राष्ट्रभाषा के लिए आवश्यक है.

१/- सरकारी अधिकारियों के लिए उसका सीखना आसान होना चाहिए.

२/-वह भारत के धार्मिक-आर्थिक अथवा राजनीतिक विचार-विनिमय का माध्यम बनने के योग्य होनी चाहिए.

३/-वह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जानी चाहिए.

४/-समूचे देश के लोगों के लिए उसका सीखना सरल होना चाहिए.

५/-इस भाषा का चुनाव करते समय अस्थायी भाव अथवा क्षणिक हितों का ख्याल नहीं रखा जाना चाहिए.

उन्होंने इन गुणों की दृष्टि से अंग्रेजी को शून्य बताया और हिन्दी को परिपूर्ण माना. इसीलिए हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर योग्य ठहरती है. आजीवन वे इस बात को को लिखते और भाषण देते रहे. यह उन्हीं का कृतित्व प्रसाद है कि सन १९४९ में कंस्टीट्यूएंट असेम्बली ने हिन्दी को राजभाषा की पदवी दी.गई.

गांधीजी के अलावा हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के समर्थक, देश के मूर्धन्य विद्वानों एवं नेताओं में पुरुषोत्तमदास टंडन, सेठ गोविन्ददास, डा.राजेन्द्रप्रसाद, वीर सावरकर, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, बंकिमचन्द्र चटर्जी, विनोबा भावे, डा. सुनीतिकुमार आदि के नाम गिनाए जा सकते हैं.

भारतीय नेताओं ने जब आंदोलन के लिए हिन्दी को अपनाया और उसका समर्थन किया क्योंकि उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दी ही वह भाषा है जिसके बोलने वालों की संख्या सबसे अधिक है और उसे भारत के अधिकांश जनता समझ सकती है.

राष्ट्रभाषा के रुप में हिन्दी का समर्थन हिन्दीतर प्रदेशों के जननायकों, समाजसुधारकों तथा विद्वानों द्वारा किया गया, बंगाल के राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र, बंकिमचन्द्र, शारदाशरण मित्र, गुजरात के स्वामी दयानन्द सरस्वती, महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक आदि ने जनभाषा के रुप में हिन्दी का समर्थन किया. उन्नीसवीं सदी के अंत तक हिन्दी का पक्ष सबल बन चुका था. उत्तरभारत के विद्वानों, साहित्यकारों, और नेताओं ने भी हिन्दी का दृढता से समर्थन किया. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी में साहित्य निर्माण का कार्य तो होने लगा किंतु उसके सम्यक प्रचार में कई बाधाएं थीं.

महात्मा गांधी की प्रेरणा से हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए सन १९१८ में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की स्थापना हुई. गांधीजी की इस संकल्पना के लग्भग ग्यारह वर्ष पूर्व ही मद्रास(अब चैन्नई) में एक तमिलभाषी मनीषी ने हिन्दी प्रचार की नींव डाली. यह मनीषी कोई और नहीं,तमिल के सुविख्यात महाकवि सुब्रह्मण्य भारतीजी थे. सर्वप्रथम भारतीजी ने अपने संपादन में निकलने वाली पत्रिका" इंडिया" के १५ दिसंबर १९०६ के अंक में तमिलभाषियों से हिन्दी सीखने की अपील की थी. महाकवि ने न केवल समूचे तमिलनाडुवासियों के प्रतिनिधि के रुप में अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति दी थी बल्कि राष्ट्रीय एकता के भविष्यदृष्टा के रुप में भी उन्होंने हिन्दी का पुरजोर समर्थन किया था. भारतीजी के ही नेतृत्व में १९०८ में सर्वप्रथम चैन्नई के तिरुवेल्लीकेणि(ट्रिप्लिकेन) में हिन्दी वर्गों के संचालन का श्रीगणेश हुआ था. इस घटना के दस वर्ष के बाद गांधीजी की संकल्पनाओं के अनुरुप दाक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की नींव पडी. इस कार्य हेतु गांधीजी ने आपने सुपुत्र देवदास गांधी को चैन्नई भेजा था.

गांधीजी के प्रेरणा से हिन्दी प्रचार समिति की स्थापना दिनांक ४ जुलाई १९३६ को वर्धा में महात्मा गांधी के निवास स्थान पर इस समिति की पहली साधारण बैठक हुई, इसमें कुल २१ सदस्य थे. इस बैटक में जिन पदाधिकरियों का चुनाव हुआ उसमें डा. राजेन्द्रप्रसादजी को अध्यक्ष, सेठ जमनालाल बजाज को उपाध्यक्ष एवं कोषाध्यक्ष, श्री मोटूरी सत्यनारायण को मंत्री, श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल को संयुक्तमंत्री,बनाया गया. हिन्दी प्रचार समिति का कार्य

गांधीजी की देखरेख में चले, इसीलिए उसका मुख्य कार्यालय वर्धा में रखा गया.

हिन्दी प्रचार समिति राष्ट्रभाषा के रुप में हिन्दी का प्रचार-प्रसार कर रही थी. अतः हिन्दी की जगह "राष्ट्रभाषा" शब्द लेने का प्रस्ताव पारित हुआ. राष्ट्रभाषा प्रचार सामिति की दो बैठकें १२.०४.४२ तथा २१.०६.४२ कों हुई. इन दोनों बैठकों के महात्मा गांधी, डा.राजेन्द्रप्रसाद, काका काहब कालेलकर, तथा श्रीमन्ननारायण उपस्थित थे. दिनांक १२.०७.४२ को सेवाग्राम में गांधीजी की कुटी मे नवगठित राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की पहली बैठक हुई. राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया. समिति के इस बैठक में मंत्री पद के लिए भदन्त आनन्द कौसल्यायन को और सहायक मंत्री के लिए श्री रामेश्वरदयाल दुबे को चुना.गया.

सन १९५६ में मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल बनी. राजधानी बनने के साथ ही मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति भोपाल ने अपना कार्य शुरु किय. इससे पूर्व इन्दौर-मऊ मे यह समिति कार्यरत थी.

किंतु भारत के २% अंग्रेजीपरस्त वर्तमान शासक इन सबको दरकिनार कर अंग्रेजी भाषा का ९८% जनता पर अंग्रेजी थोपने का प्रयास करते रहे हैं. इस प्रकार देश पर विदेशी भाषा थोपने वाले अंग्रेजी -परस्त नेताओं का निर्णय कितना खोखला था. यह इस बात से प्रमाणित हो जाता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी को पीछे ढकेलने वाली शाजिशों के बावजूद हिन्दी भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी लोकप्रिय हो रही है. इसका सबसे बडा प्रमाण यही है कि भारत के लगभग १७० स्वयंसेवी संगठन हिन्दी के प्रचार-प्रसार एवं संवर्धन निष्ठा के साथ एवं अधिक सुनियोजित ढंग से कर रहे हैं. जहाँ तक विश्वभाषा के रुप में हिन्दी की लोकप्रियता और प्रतिष्ठा का प्रश्न है, शंकरदयाल सिंह के निम्नाकिंत शब्द इसे भली भांति स्पष्ट करते हैं-" जिस भाषा की पढाई विश्व के १३६ विश्वविद्दालयों में हो रही हो, ५० से अधिक देश जिस भाषा का प्रयोग किसी न किसी रुप में कर रहे हों तथा जिसके बोलनेवालों की संख्यां ७० करोड के लगभग पहुँच चुकी हो, वह भाषा अन्तर्राष्ट्रीय न कही जायेगी तो क्या कहा जाएगा".

इस संबंध में वास्तविकता यह है कि गुट निर्पेक्ष राष्ट्रों के मुखिया भारत, संसार की उभरती

अर्थ-शक्तिभारत, परमाणुशक्ति संपन्न राष्ट्र भारत, संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन भारत,एवं संसार केसबसे बडे बाजारों में एक भारत से निकटता बढाने के लिए विश्व का हर देश ललायित है. यही कारण है कि विश्व के अनेक देश अपने यहाँ हिन्दी शिक्षण की उच्चस्तरीय व्यवस्था कर रहे हैं. इस देशों में अमरीका, रुस, इंगलैण्ड, फ़्रांस, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, कनाडा जैसे विश्व के प्रभावशाली देश भी शामिल हैं. इतना ही नहीं प्रवासी भारतीयों ने अपनी संस्कृति के रक्षा के लिए हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था विश्व में बडे व्यापक स्तर पर की है. वे हिन्दी की सुरक्षा, प्रतिष्ठा एवं प्रचार के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध हैं.

संसार में कुल मिलाकर लगभग २८०० भाषाएं हैं. इनमे १३ ऎसी भाषाएं हैं,जिनके बोलने वालों की संख्यां ८ करोड से अधिक है. ताजा अंकडों के अनुसार संसार की भाषाओं में, हिन्दी भाषा को द्वितीय स्थान प्राप्त

है. भारत के बाहर वर्मा, श्रीलंका, फ़ीजी, मलाया, दक्षिण और पूर्वी अफ़्रीका में भी हिन्दी बोलने वालों की संख्या ज्यादा है. एशिया महादेश की भाषाओं में हिन्दी ही एक ऎसी भाषा है, जो अपने देश के बाहर भी बोली और लिखी जाती है,क्योंकि यह एक जीवित और सशक्त भाषा है.

ताजा आंकडों के अनुसार भारत में हिन्दी जानने वालों की संख्या सौ करोड है. भारत के बाहर पाकिस्थान, इजराइल, ओमान, इक्वाडोर, फ़िजी, इराक, बांगलादेश, ग्रीस, ग्वालेमाटा,म्यांमार, यमन, त्रिनीदाद, सउदी अरब, पेरु, रुस, कतर,, मारीशस, सूरीनाम, गुयाना, इंग्लैण्ड आदि में बोली जाती है. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी को राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा की मान्यता मिलने जा रही है. वर्तमान में अंग्रेजी, फ़्रेंच,चीनी,रुसी एवं स्पेनिस भाषाओं को राष्ट्रसंघ की मान्यता प्राप्त है.

संसार में हिन्दी ही एक ऎसी भाषा है,जिसे विदेशियों ने सर्वप्रथम विश्वपटल पर रखा. हिन्दी के शोधार्थी डा.जुइजिपियोतैस्सी तोरी ने फ़्लोरेंस विश्वविद्धयालय इटली में रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण का तुलनात्मक अध्ययन १९११ में शुभारंभ किया. भारत की संस्कृति ने उन पर इतना असर डाला कि स्वदेश “इटली” छोडकर जीवनपर्यंत बीकानेर में रहे. साम्यवादी देशों में तुलसीकृत रामचरित मानस की लोकप्रियता देख, स्टालिन ने द्वितीय विश्वयुद्ध के समय अकादमीशियन अलकसई वरान्निकोव द्वारा रुसी भाषा में पद्दानुवाद कराया, जिसमें साढे दस वर्ष लगे. तुलसीभक्त वेल्जियम में जन्में फ़ादर रेवरेण्ड कामिल बुल्के,जिन्होंने हिन्दी के कारण भारत की नागरिकता ली. तुलसी की काव्यकृति हनुमानचालीसा का रोमानियन भाषा में, बुकारेस्ट में प्रो. जार्ज अंका ने डा. यतीन्द्र तिवारी के सहयोग से अनुवाद किया.

अमेरिका के कई विश्वविद्दालयों में हिन्दी पढाई जाती है. यथा- पेनस्टेटयेल, लायोला, शिकागो, वाशिंगटन, ड्यूक, आयोवा, ओरेगान, मिशिगन, कोलंबिया, हवाई इलिनाय, अलवामा, युनिवर्सिटी आफ़ बर्जिनिया, युनि.आफ़ मीनेसोटा, फ़्लोरिडा, वैदिक वि.वि.सिराक्यूज, केलिफ़ोर्निया वि.वि., वर्कले युनिवर्सिटी आफ़ टेक्सास, रटगर्स, एमरी, नार्थ केरोलाइना स्टेट,एन.वाय.यू.इन्डियाना, यूसीएलए, मेनीटावा,लाट्रोव तथा केलगेरी विश्वविद्धालय आदि जहां हिन्दी की शिक्षा दी जाती है.

आधुनिक चीन में हिन्दी की विधिवत शुरुआत सन १९४२ में यूनान प्रांत पूर्वी भाषा और साहित्य कालेज में हिन्दी विभाग की स्थापना के साथ हुई. यह वह समय था जब सारा संसार द्वितीय विश्वयुद्ध की चपेट में था. ऎसी स्थिति में अपनी सुरक्षा के लिए हिन्दी विभाग एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरित होता रहा. तीन वर्षों बाद सन १९४५ में हिन्दी विभाग यूनान प्रांत से स्थान्तरित होकर छोंगछिन में आ गया और साल भर बाद हिन्दी चीन की राजधानी में स्थित पीकिंग वि.वि. के विदेशी भाषापीठ में आसीन हुई और तबसे यहीं फ़ूलती-फ़लती रही. यहां हिन्दी के अलावा संस्कृत, पालि, और उर्दू भाषा साहित्य का अध्ययन-अध्यापन होता है. १९४९ से १९५९ तक का समय विकास की दृष्टि से बेहतरीन रहा. बाद के वर्षों में काफ़ी शिथिल पडा.. १९६०-१९७९ तक का समय चीनी जनता और समाज के कठिनाइयों भरे दिन थे, हिन्दी विभाग सिकुडकर छोटा हो गया .१९८०-१९९९ का यह दौर परिवर्तन का दौर रहा. हिन्दी की

मशाल को प्रज्जवलित करने में तीन प्राध्यापकों का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता. वे हैं प्रो.यीनह्युवैन, प्रो.लियो आनवू और प्रो. चिनतिंनहान. इन तीनो विद्वानों ने अपनी लगन ,कर्मठता और आदर्श के बल पर हिन्दी के लिए जितना कार्य किया वह प्रेरणादायक है.

जापान में विदेशी भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन के दो प्रमुख केन्द्र हैं. तोक्यो युनि. आफ़ फ़ारेन स्टडीज एवं ओसाका युनि.आफ़ फ़ारेन स्टडीज. इन दोनों ही वि.वि. में सन १०११-१०२१ से ही हिन्दुस्थानी भाषा के रुप में हिन्दी-उर्दू की पढाई का सिलसिला प्रारंभ हो गया था. इसकी नींव डालने वाले विद्वान श्री.प्रो.रेइची गामो तथा प्रो.एइजो सावा हैं. १९११ में डिग्रीकोर्स आफ़ हिन्दुस्तानी एण्ड तमिल शुरु हो गया था. सन १९०९ से १९१४ के मध्य प्रसिद्ध सेनानी मोहम्मद बरकतउल्ला इस विश्वविद्धालय में "हिन्दुस्थानी भाषा" के विजिटिंग प्रोफ़ेसर के रुप में नियुक्त किए गए. ये दोनो वि.वि. सरकारी विश्वविद्धयालय हैं, जहां ४ वर्षीय पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं. आरम्भ में प्रो. देई ने तोक्यो में तथा प्रो.एइजो स्ववा ने ओकासा में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन की नींव डाली. ये विद्वान प्रोफ़ेसर हिन्दी के साथ ही उर्दू भी पढाते थे. सन २००३ में सूरीनाम में आयोजित सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलन में प्रो. तोसियो तनाका का "विश्व हिन्दी सम्मान" से सम्मानित किया गया

तोकियो और ओसाका के राष्ट्रीय वि.वि. के अतिरिक्त अन्य कई गैर सरकारी वि.वि. और शिक्षा संस्थान भी हैं, जहाँ वैकल्पिक विषय के रुप में प्रारंभिक और माध्यमिक कक्षाओं तक हिन्दी पढने-पढाने की व्यवस्था है. ताकुशोक वि.वि. के प्रो. हेदेआकि इशिदा, सोनोदा वीमेन्स युनिवर्सीटी के प्रो. उचिदा अराकि और ताइगेन हशिमोतो, तोमाया कोकुसाई वि.वि. के प्रो. शिगोओ अराकि और मिताका शहर में स्थित एशिया-अफ़्रीका भाषा के प्रो. योइचि युकिशिता का नाम अत्यंत प्रसिध्द है.

मारिशस में भारतीय मजदूरों के आगमन के साथ ही इस भूमि पर हिन्दी का प्रवेश हुआ. जिन मजदूरों को भारत के भोजपुर इलाके से यहां लाए गए थे "गिरमिटिया" कहलाए. वे अपने साथ झोली में रामचरित मानस, हनुमानचालिसा, महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथ लेकर आए. इन्हें विरासत में समृद्ध साहित्य, धर्म, और संस्कृति का ज्ञान था. अपनी जमीन से उजडॆ-उखडॆ इन मजदूरों को नयी जमीन, यातना शिविर में अपने को जीवित रखने, स्थापित करने और अपनी अस्मिता को बनाए रखने के लिए भोजपुरी और हिन्दी का सहारा ही सबसे बडा अवलंबन था. मजदूरी की क्रूर नियति से दुखी और हताश ये मजदूर, कभी विरहा, कभी कजरी तो कभी हनुमानचालीसा की पंक्तियों से अपनी आंतरिक शक्ति बचा रखने और रात में रामचरितमानस का पाठ उनकी थकान मिटाकर हौसला बढाते. कई अवरोधों के बावजूद बैठकें चलती और भाषा के साथ संस्कृति और धर्म को गति देते रहे. हिन्दू महासभा, आर्यसभा, हिन्दी प्रचरिणी सभा तथा अन्य संस्थानों के सहयोग तथा पण्डित विष्णुदयाल और डा. शिवसागर रामगुलाम के नेतृत्व में भारतीय संस्कृति और इसकी वाहक हिन्दी अपनी उत्कृष्टता पाने में सफ़ल हुई. आज महात्मा गांधी संस्थान और इन्दिरा गांधी सांस्कृतिक केन्द्र, भाषा प्रचार और सांस्कृतिक गतिविधियों को विस्तार दे रहे हैं. भारत सरकार के सहयोग से अब हिन्दी स्पीकिंग यूनियन तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर संस्थान भी इस सांस्कृतिक

अभियान में जुड गए हैं, तथा हिन्दी सचिवालय की स्थापना में नया आयाम मिला है.

थाईलैण्ड में हिन्दी अध्ययन-अध्यापन का कार्यक्रम सबसे पहले थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम से शुरु हुआ जिसकी स्थापना सन १९४३ में स्वामी सत्यानन्दपुरीजी ने की थी. आचार्य डा. करुणा कुसलासायजी पहले थाई विद्वान थे, जो हिन्दी पढने भारत आए थे. महात्मा गांधी से सारनाथ में मिले और जब वे लौटे तो थाई-भारत सांस्कृतिक आश्रम में ही हिन्दी पढाना शुरु किया और बैंकाक के भारतीय दूतावास में नौकरी शुरु की.

सन १९८९ में सिल्पाकोव वि.वि. के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग मे एम.ए.संस्कृत पाठ्यक्रम बनाया गया. उस समय आचार्य डा. चमलोडां शारफ़ेदनूक हिन्दी शिक्षक थे. सन १९६६ में शिलपाकोन वि.वि. के पुरातत्व विज्ञान संकाय के प्राच्य भाषा विभाग के संस्कृत अध्यापन केन्द्र की, भारतीय आगन्तुक डा. सत्यव्रत शास्त्री के द्वारा स्थापना की गई. १९९३ में थमसात वि.वि. में थाईलैण्ड के भारतीय व्यापारियों के सहयोग से भारत अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई. डा. करुणा कुशलासाय, डा. चिरफ़द प्राकन्विध्या एवं आचार्य डा. चम्लोंग शरफ़दनूक तीनों ने हिन्दी कक्षाएं चलायी.

इस तरह हम देखते हैं कि संपूर्ण विश्व में हिन्दी अपना स्थान बना चुकी है. भारत में, दुर्योग से वह राष्ट्रभाषा तो नहीं बन पायी, लेकिन विश्वभाषा होने का गौरव और दर्जा तो उसे पहले से ही मिल चुका है.

....

- राजधर्म और राजा के कर्तव्य

महर्षि वेद व्यास रचित महाभारत के शान्ति-पर्व में महात्मा भीष्मजी ने राजा युधिष्ठिर को राज-धर्म और राजा के कर्तव्यों आदि के बारे में विस्तार से समझाया था. इस आलेख में उसे सादर प्रस्तुत किया जा रहा है. पाँच हजार वर्ष पूर्व प्रचलित राजधर्म और राजा के कर्तव्यों की व्याख्या, आज के संदर्भ में कितनी कारगर और उपयोगी सिद्ध हो सकती है, इस पर पाठक स्वयं विचार करे और उसकी मीमांसा करे.

राजधर्म और राजा के कर्तव्य

महाभारत युद्ध समाप्त हो चुका था. भीष्म पितामह बाणों की शैय्या पर पडॆ हुए उत्तरायण की प्रतीक्षा कर रहे थे. सूर्य के उत्तरायण होने पर वे देह त्यागने वाले थे. एक दिन भगवान श्री कृष्ण ने उनसे मिलने का निश्चय किया और धर्मराज, भीम, अर्जुन, नकुल आदि मुख्य वीरों को लेकर कुरुक्षेत्र में जा पहुँचे. इस समय भीष्म ध्यानावस्थित होकर भगवान श्री कृष्ण की स्तुति कर रहे थे. सभी लोगों को निकट आया हुआ देखकर वे गदगद हो उठे. इसी

समय श्रीकृष्ण भीष्म से मधुर वाणी में बोले- हे भीष्मजी ! आपको शर-शय्या पर पडॆ-पडॆ महान कष्ट हो रहा होगा. फ़िर भी आपकी तरह मृत्यु को इस तरह वश में करने वाला मैंने तीनों लोकों में आज तक नहीं देखा. ये धर्मराज ! अपने कुटुम्ब के नाश हो जाने से महान दुखी हो रहे हैं. अब आप जैसे भी हो इनके दुख दूर करें. **आप महान राजनीतिज्ञ हैं. कृपा करके आप इन्हें राज-धर्म की अच्छी तरह समझा दें.**

श्री कृष्ण की बात सुनकर भीष्म ने उनकी स्तुति करते हुए कहा-"हे मधुसूदन...हे माधव..आप तो स्वयं धर्म के सभी मर्मों को समझने वाले हैं. फ़िर आप मुझसे क्यों पूछ रहे हैं ?. मैं तो आपका शिष्य हूँ. अच्छा हो कि आप स्वयं धर्मराज को इसके बारे में समझायें. इस समय मेरे शरीर में अत्यन्त दाह और पीडा है. मुझमें बोलने के शक्ति भी नहीं रह गयी है, फ़िर मैं धर्मोपदेश किस प्रकार दे सकूँगा"

श्री कृष्णजी भीष्मजी के कथन को सुनकर बोले-" हे भीष्मजी ! संसार में जितने भी सत-असत पदार्थ हैं, वे मुझसे ही उत्पन्न हैं. अतः मैं तो यश से परिपूर्ण हूँ ही. किन्तु मैं आप जैसे भक्तों का यश बढाने हेतु आपके ही मुख से युधिष्ठिर को उपदेश करना चाहता हूं., जिससे संसार में आपका सम्मान और भी बढे. आपके मुख से निकला हुआ हर वाक्य वेद-वाक्य होगा. आप दोष से मुक्त और ज्ञानी हैं. अतएव आप ही धर्मराज को उपदेश देने की कृपा करें. इसके लिए मैं आपको वरदान देता हूँ कि अब से आपको कोई पीडा दाह या व्यथा न रह जाएगी और आपकी स्मरण-शक्ति भी पहले से भी करोड गुनी तेज हो जाएगी.

दूसरे दिन श्रीकृष्ण पुनः पाण्डवों के साथ रथ पर आरूढ होकर भीष्मजी के पास जा पहुँचे. वहाँ उन्होंने देखा कि ऋषि-मण्डली पहले से ही विराजमान है. धर्मराज युधिष्ठर ने पितामह सहित सभी ऋषि-मुनियों को प्रणाम किया और भीष्म से बोले**-" हे पितामह ! आप मुझे राजधर्म के बारे में विस्तार से बतलाने की कृपा करें."**

भीष्मजी ने कहा"-" हे धर्मराज ! मैं भगवान श्रीकृष्ण एवं सभी ऋषि-मुनियों को प्रणाम कर तुमसे राजधर्म कहता हूँ, उसे सुनिये. हे कुरुराज ! राजा ऎसा होना चाहिए जो प्रजा को प्रसन्न रख सके. राजा को सदैव पुरुषार्थी होना चाहिए. उसे दैव के भरोसे होकर कभी पुरुषार्थ का त्याग नहीं करना चाहिए. हे वत्स ! कार्य में असफ़लता होने पर राजा को खिन्न नहीं होना चाहिए. उसे सत्यवादी होना चाहिए. राजा का स्वभाव न कोमल हो न कठोर हो, क्योंकि कोमल स्वभाव वाले राजा की आज्ञा कोई नहीं मानता और कठोर स्वभाव वाले राजा से प्रजा बहुत दुःख उठाती है. ब्राह्मणों को प्राणदण्ड नहीं देना चाहिए, उसे देश-निकाले का दण्ड पर्याप्त है..अग्नि जल से, क्षत्रिय ब्राह्मण से तथा लोहा पत्थर से नष्ट हो जाता है. ये सारे ही अपने उत्पन्न कर्ता से संघर्ष करने पर नष्ट हो जाते हैं. जैसे जल अग्नि को नष्ट कर देता है, पत्थर से लोहा कुंद पड जाता है. लेकिन यदि ब्राह्मण युद्ध के लिए ललकारता हो तब उसके वध से पाप नहीं लगता. राजा को न कभी अपने धर्म का त्याग करना चाहिये और न ही उसे अपराधियों को दण्ड देने में संकोच करना चाहिए, क्योंकि इस तरह से सेवक मुँह चढे हो जाते है और राजकाज में अवरोध उत्पन्न करने लगते हैं. हे राजन ! हर राजा को परिश्रमी एवं उद्दोगी होना चाहिए. जिस प्रकार बिल में रहने वाले चूहों को सर्प निगल लेता है, उसी प्रकार दूसरे राजाओं से लडाई न करने वाले राजा तथा घर न छॊड़ने वाले ब्राह्मण को पृथ्वी निगल जाती है.

"राजा के सात अंग होते हैं- (१) राज्य (२) मंत्री, (३) मित्र (४) कोष,(५) देश (६) किला और ७ वां सेना. राजा को इनकी रक्षा और सदुपयोग करना चाहिए. राजा के समस्त धर्मों का सार उसका प्रजा-पालन करना चाहिए. राजा को राज्य प्रबन्ध को सुचारु रुप से चलाने के लिए गुप्तचर रखना चाहिए , जो राजा को देश के समाचारों से अवगत कराता रहे. राजा को चाहिए कि वह अन्य देश के राजाओं के साथ सन्धि करके उन देशों में अपना राजदूत रखे.

प्रजा को बिना कष्ट दिये, कर इस प्रकार वसूलना चाहिए जैसे गाय को बिना कष्ट दिये उससे दूध ले लिया जाता है. सेवकों को कभी गुटबन्दी में न पड़ने देना चाहिए. राजा का कर्तव्य है कि वह निरन्तर अपने कोष को बढ़ता रहे. साथ ही निर्बल शत्रु को भी कम न समझे. जैसे थौडी सी आग जंगल को जला देती है, उसी प्रकार छौटा सा शत्रु भी विनाश कर सकता है."

भीष्मजी के वचनों को सुनकर सभी उपस्थित ऋषियों ने उनकी प्रशंसा की. फ़िर संध्या होने के कारण सभी लोग वापिस हस्तिनापुर लौट आए.

दूसरे दिन पाण्डव तथा श्रीकृष्णजी नित्य कर्म से निवृत्त होकर फ़िर कुरुक्षेत्र में भीष्मजी के निकट जा पहुँचे और प्रणाम करने के बाद उनसे पूछा-" **हे पितामह ! कृपा करके बताएं कि राजा शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई?**

उन्होंने कहा-"हे धर्मराज ! सत्ययुग में राजा नाम की कोई चीज ही नहीं थी. क्योंकि उस समय न कोई दण्ड था और न ही कोई अपराध करने वाला ही था. उसके बाद लोग मोह के वशीभूत होने लगे. मोह से काम की उत्पत्ति हुई और काम से राग पैदा हुआ.और राग से सभी प्रमादी हो गए और अपने-अपने कर्तव्यों को भूल गए. कर्म भूलने से धर्म का ह्रास होने लगा. तब ब्रह्माजी ने एक लाख अध्यायों का नीति शास्त्र बनाया. वह ग्रन्थ **त्रिवर्ण** के नाम से प्रसिद्ध हुआ. हे धर्मराज ! इन शास्त्रों में साम-दाम-दन्ड, भेद तथा उपेक्षा इन पाँचों का पूर्ण वर्णन है."

धर्मराज युधिष्ठर ने पूछा-"**चारों वर्ण, चारों आश्रम तथा राजाओं के कौन-कौन से धर्म श्रेष्ठ माने गए हैं."**

ने कहा-"हे धर्मराज ! धर्म की महिमा ही अपरम्पार है. उसे ध्यान से सुनो. सच बोलना, क्रोधित न होना, धन को बाँटकर उसका प्रयोग करना, क्षमा करना, अपनी स्त्री से सन्तान उत्पन्न करना, शौच करना, किसी से बैर न रखना. ये सभी वर्गों के लिए समान है. ब्राह्मणों का धर्म है, इन्द्रिय दमन, स्वाध्याय करना. क्षत्रियों का धर्म है दान देना तथा किसी से कुछ माँगना नहीं, यज्ञ करना तथा कराना नहीं. वेदादि का अध्ययन करना, लुटेरों को दण्ड देना तथा प्रजा का पालन करना. वैश्यों का धर्म है, दान, अध्ययन, यज्ञ करना व पवित्र उपायों से धन कमाना, खेती कराना और पशुओं का पालन करना. शूद्र का धर्म है इन चारों की सेवा करना."

युधिष्ठिर ने फ़िर पूछा**- "हे पितामह ! राष्ट्र का क्या कर्तव्य है ?"**

भीष्मजी ने उत्तर दिया- हे धर्मराज ! राजा का राज्याभिषेक करना राष्ट्र का कर्तव्य है. बिना राजा के प्रजा नष्ट हो जाती है. राज्य में उपद्रव होने लगता है तथा चोरी एवं हिंसा की घटना बढ़ने लगती है. बिना राजा के सबल निर्बल को खाने लगता है."

युधिष्ठर ने पूछा**-"हे पितामह ! कृपा करके बतायें कि राजा के क्या कर्तव्य हैं उसे अपने देश की रक्षा कैसे करनी चाहिए?"**

भीष्मजी ने कहा- " हे धर्मराज ! राजा को पहले अपने मन को जीत कर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनी चाहिए. उसे राज्य के प्रमुख स्थानों पर सेना का प्रबन्ध करना चाहिए. साम-दाम-दण्ड, भेद से धन प्राप्त करना चाहिए तथा प्रजा की आय का छटवाँ भाग, कर के रुप में प्राप्त करना चाहिए. राजा का कर्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को पुत्र की भाँति माने तथा मित्रों और मंत्रियों की सलाह से काम करे. जो राजा दण्ड-नीति का पूरा-पूरा प्रयोग करता है, उसके राज्य में सत्ययुग आ जाता है.

“ हे युधिष्ठिर ! राजा के छत्तीस गुण हैं. जो इनका पालन करता है, वही स्वर्ग का अधिकारी होता है.

युधिष्ठिर ने कहा – **हे पितामह ! शासन बिना मित्र और मन्त्री की सहायता से नहीं चल सकता. कृपया बताएं कि उसके मित्र और मन्त्री कैसे होने चाहिए ?”**

भीष्मजी ने कहा;- हे धर्मराज ! मित्र चार प्रकार के होते हैं---सहार्थ, यजमान, सहज, तथा कृत्रिम. इसके अतिरिक्त धर्मात्मा मित्र भी होता है. ऎसा मित्र किसी का पक्ष न लेकर केवल धर्म का पक्ष लेता है. उक्त चार मित्रों में पहले के दो मित्र श्रेष्ठ होते हैं और अन्त के मित्र उत्तम नहीं होते. लेकिन कार्य साधन अपने सभी मित्रों से करना चाहिए. बुद्धिमान राजाओं को किसी मित्र पर पूरा-पूरा भरोसा नहीं करना चाहिए. ऎसा करने वालों की अकाल मृत्यु हो जाती है. हे युधिष्ठिर ! कुटुम्बियों से सदा सावधान रहना चाहिए. एक कुटुम्बी दूसरे कुटूम्बी की उन्नति सहन नहीं कर सकता. लेकिन कुटुम्बियों की अवहेलना कभी नहीं करनी चाहिए. क्योंकि दूसरों के दबाने पर कुटुम्बी ही सहायता करता है.”

“ हे राजन ! जो मन्त्री खजाने की चोरी करता हो और राज्य के गुप्त भेदों को खोलता हो, ऎसे मन्त्रियों को नहीं रखना चाहिए. कोष के स्वामी की सदा रक्षा करते रहना चाहिए, क्योंकि धन के लोभ से लोग मरवा भी सकते हैं. मन्त्री के पद पर शीलवान, सत्यवादी, सदाचारी तथा दयालु व्यक्ति को ही रखना चाहिए.”

“शत्रु से मित्रता करने वाले को शत्रु ही समझना चाहिए. उसे गुप्त भेद कभी नही बताना चाहिए. सदाचारी एवं विचारशील व्यक्ति ही गुप्त सलाह सुनने के अधिकारी हैं. “

युधिष्ठिर ने पूछा’**-“ हे पितामह ! राष्ट्र की रक्षा तथा उसका प्रबन्ध किस प्रकार करना चाहिए?”**

भीष्मजी ने समझाया;-“ धर्मराज ! राजा को चाहिए कि वह एक ग्राम का एक-एक अधिकारी अलग-अलग रखे. एक ग्राम वाले अधिकारी का कर्त्तव्य होगा कि वह अपने ग्राम की सब सूचनाएँ दस ग्रामों के अधिकारी के पास भेजे. उसी प्रकार दस ग्राम वाला सौ अधिकारी के पास उक्त सूचना को भेज दे. फ़िर सहस्त्र ग्रामों वाला अधिकारी उसकी सूचना राजा के पास देगा. इस प्रकार राजा को हर सूचना मिलती रहेगी. ग्रामों की पैदावार ग्रामों के अधिकारियों के पास ही रहनी चाहिए. वे वेतन के रूप मे नियत उपज का प्रयोग कर सकते हैं. हर नीचे का अधिकारी अपने ऊपर वाले अधिकारी को कर देता रहे. सौ गाँव के मालिक को उसके खर्च के लिए एक ग्राम की आमदनी देनी चाहिए. सहत्र ग्रामों वाले अधिकारी के पास युद्ध सम्बन्धी सामग्री रहनी चाहिए तथा उनके पास राजा का एक पदाधिकारी रखना चाहिए. बडॆ-बडॆ नगरों के प्रबन्ध के लिए एक-एक अध्यक्ष रखना चाहिए. प्रत्येक नगराध्यक्ष के पास सेना तथा गुप्तचर हों.”

युधिष्ठिर ने फ़िर प्रश्न किया;**- “ हे पितामह ! यदि कोई राजा चढाई कर दे तो उसके साथ किस प्रकार युद्ध करना चाहिए ?“**

भीष्मजी ने कहा;-“ हे कुरु नन्दन ! बिना कवच वाले से युद्ध नहीं करना चाहिए. जब कोई कवच धारण कर अस्त्र-शत्र सम्हाले सामने आये, तो राजा को तुरन्त उसके साथ युद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाना चाहिए. एक वीर के साथ एक ही वीर का युद्ध होना चाहिए. राजा धर्म-युद्ध में धर्म का आचरण करे एवं कपट युद्ध में कपट का. संकट में

पडॆ हुए शत्रु पर अथवा अस्त्र त्यागे हुए योद्धा पर तथा रथ से नीचे उतरने वाले या शरण में आने पर कभी कोई चोट न करे. शिविर मे आने वाले की भली-भाँति चिकित्सा करा कर उसे घर भिजवा देना चाहिए.